यूरोपकी भक्त-स्त्रियाँ

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९९०, प्रथम संस्करण ५,२५०
मूल्य ।) चार आना

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

निवेदन

यह पुस्तक भक्त-चरित-मालाका नवाँ पुष्प है। इसकी कथाएँ त्याग और सेवासे पूर्ण हैं। गुजराती, बंगला और अंग्रेजी ग्रन्थोंके आधारपर ये कथाएँ लिखी गयी हैं। इन चरित्रोंको पढ़नेसे पाठकोंके मनोंमें सेवा, त्याग और प्रेमके भाव उत्पन्न हो सकते हैं। आशा है, इस पुस्तकसे लाभ उठाया जायगा।

गीताप्रेस,
गोरखपुर

हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीहरिः

निबन्ध-सूची
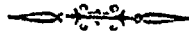
चित्र-सूची

साध्वी एलिजाबेथ

श्रीहरिः

यूरोपकी भक्त-स्त्रियाँ

साध्वी रानी एलिज़ाबेथ

यामय ईश्वरकी इस विश्व-वाटिकामें हर समय किसी-न-किसी वृक्षमें एक-न-एक ऐसा पुष्प विकसित हुआ रहता है जिसकी पवित्र और सुन्दर सुगन्ध प्राप्तकर वाटिकाके मुरझाये हुए समस्त पदार्थ पुनः जीवन प्राप्तकर ताप-को शान्त करते हैं। आजसे करीब सात सौ वर्ष पूर्व तेरहवीं शताब्दीमें वाटिकाके पश्चिमी भागमें एक ऐसा खुशबूदार फूल खिला था जिसकी अमृतमय शान्त सुगन्धसे सारा देश प्रमुदित हो उठा। उस कमनीय कुसुमका नाम था साध्वी एलिज़ाबेथ।

एलिज़ाबेथके विषयमें एक अद्भुत कथा प्रचलित है। कहते हैं कि सन् १२०६ ई० में सैक्सनी (Saxony-Germany) की राजसभामें एक भविष्यद्वक्ता ज्योतिषीने आकर गम्भीर-स्वरसे कहा कि 'हंगरी (Hungary) देशमें एक ऐसा उज्ज्वल नक्षत्र उदय होगा, जिसके प्रखर प्रकाशसे तुम्हारा सारा देश जगमगा उठेगा।' इस घटनाके थोड़े ही दिनों बाद सन् १२०७ ई० में हंगरीके राजा एण्ड्रयू (Andrew) के घर राजकन्या एलिज़ाबेथका जन्म हुआ। इस राजवंशमें पहले बहुत-से धार्मिक पुरुष हो चुके थे। उसी परम्पराके प्रभावसे एलिज़ाबेथके माता-पिताके भाव बड़े ही उच्च और धर्ममय थे। इसीसे उन्होंने आरम्भसे ही शिशु-बालिका एलिज़ाबेथके हृदयमें सच्चे पारमार्थिक भावोंका बीजारोपण कर एवं यत्नपूर्वक अच्छी धार्मिक शिक्षाद्वारा उन्हें अंकुरित और पल्लव-पुष्प-समन्वित करना शुरू कर दिया। साधारण बालकोंको जैसे सांसारिक कहानियाँ सुननेमें आनन्द मिलता है वैसे ही बालिका एलिज़ाबेथको ईश्वर-सम्बन्धी बातें अच्छी लगतीं और वह भगवान्‌की पवित्र लीलाओंको सुनकर आनन्दसे गद्गद हो जाती। दरिद्र और दीन-दुखियोंको देख बालिकाका हृदय दयासे पिघल जाता और वह आँखोंसे आँसू बहाने लगती। यह देखकर लोग कहते कि सचमुच यह मानवी नहीं, देवी है।

सैक्सनीके प्रतापी और धार्मिक राजा हरमैन (Hermann) ने हंगरीकी राजकुमारी एलिज़ाबेथकी भाँति-भाँतिसे प्रशंसा सुनी और

पूर्वोक्त ज्योतिषीकी कही हुई बातें यादकर एलिज़ावेथको पुत्रवधू बनानेका दृढ़ विचार कर लिया। राजकुमार लुई (Louis) के पवित्र और मधुर स्वभाव तथा सद्गुणावलीके कारण एलिज़ावेथ-के साथ उसका सम्बन्ध सोनेमें सुगन्धकी तरह सुन्दर समझकर राजा हरमैनने कई ऊँचे घरानेकी स्त्रियोंको उचित रीतिसे समझा-बुझाकर अपने प्रतिष्ठित दरबारियोंके साथ हंगरीके राजा एण्ड्रयूके पास इस कार्यके लिये भेजा। इन लोगोंने वहाँ पहुँचकर उचित अभिवादनके अनन्तर राजा एण्ड्रयूकी सेवामें सैक्सनी-नरेशका प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसे सुनकर सभी लोगोंको प्रसन्नता हुई।

उस समय वहाँ राजपरिवारोंमें एक ऐसी प्रथा थी कि यदि राजकुमार और राजकुमारीका सम्बन्ध लड़कपनमें निश्चय हो जाता था तो वाग्दानके पश्चात् राजकुमारीको अपनी भावी ससुरालमें रहना पड़ता था। तदनन्तर वर-कन्याके विवाहयोग्य उम्र होनेपर उनका विवाह कर दिया जाता था। एलिज़ावेथके माता-पिता पुत्रीके लिये इससे योग्य वर मिलना कठिन समझ प्रस्तावको स्वीकार कर इसी प्रथाके अनुसार हृदयको पाषाणवत् बनाकर आनन्दोत्सव मनाते हुए अपनी हृदय-दुलारी कन्याको बहुमूल्य गहनों-कपड़ोंसे सुसज्जित कर सैक्सनीके लिये विदा कर दिया। सैक्सनीके लोग एलिज़ावेथ-सरीखे रत्नको पाकर आनन्दभरे हृदयसे अपने राज्यको लौटे और राजकुमारीको बड़े उत्साहके साथ राजा हरमैन और रानी सोफियाके सम्मुख उपस्थित

किया। राजकुमारीका करुण और निर्मल मुखकमल देखकर दम्पतिने कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे परमात्माको धन्यवाद दिया और वात्सल्यभावसे भरकर कन्याको बरबस गोदमें बैठाकर उसे प्यार करने लगे। इसके बाद शुभ मुहूर्तमें प्रतिष्ठित बन्धु-बान्धवोंकी उपस्थितिमें महलके अन्दर बड़े उमंग और उत्साहके साथ वाग्दान-संस्कार किया गया। इस समय एलिज़ाबेथकी उम्र लगभग पाँच वर्षकी थी।

माता-पिताके स्नेहसे वञ्चित बालिका अपनी सरलता, ईश्वरके प्रति प्रेम, दीन-दुखियोंके प्रति दया आदि आदर्श सद्गुणोंके कारण राजा हरमैन और उसके परिवारकी परम स्नेहपात्री बनकर दिनोंदिन उनके हृदयमें अपना अधिकार जमाने लगी। स्वयं राजा तथा उनकी एक निकट-सम्बन्धिनी पोलैण्डकी साध्वी रानी एलिज़ाबेथके हृदयमें धर्मभावका अधिकाधिक विकास करने लगे। माता-पितासे अलग होनेके दो वर्ष बाद एलिज़ाबेथकी स्नेहमयी पतिव्रता माता किसी षड्यन्त्रकारी शत्रुके हाथसे अपने स्वामीकी जान बचाते समय उसकी तलवारकी शिकार बनकर स्वर्ग सिधार गयी। इस समाचारसे एलिज़ाबेथके हृदयपर गहरा धक्का लगा। वैराग्यकी प्रबल भावना जाग उठी। उसी समय उसने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि 'जब संसारमें कुछ भी स्थिर नहीं, तब संसारके पदार्थोंमें आसक्तिसे क्या लाभ? आजसे मैं केवल एक ईश्वरको ही सबसे ज्यादा चाहूँगी।' इन दिनों एलिज़ाबेथके साथ

आमोद-प्रमोद करनेके लिये कई अमीर-घरोंकी लड़कियाँ आया करतीं, परन्तु उसे इनके साथ सांसारिक आमोद-प्रमोदमें समय विताना विल्कुल नीरस प्रतीत होता। एलिज़ावेथ इनके साथ वाहरी मनसे खेलती-खेलती कभी-कभी श्मशानकी ओर चली जाती और कब्रोंके अन्दर सोये हुओंको याद करके, अपनी भी एक दिन यही दशा होगी, ऐसा विचारकर ईश्वरसे प्रार्थना करने लगती कि 'हे प्रभो! पापोंसे हमारी रक्षा करो।'

पूर्वकालमें ईसाई साधक ईसामसीहके द्वारा प्रेरित वारह शिष्योंमेंसे किसी एकको अपना रक्षक चुन लिया करते थे। एलिज़ावेथने भी साधु 'जान' को अपना रक्षक चुना और उस स्वर्गीय आत्माकी प्रियपात्र वननेके लिये वह अपने हृदयको पवित्र, प्रभु-प्रेम और दयासे पूर्ण रखनेका सतत प्रयत्न करने लगी। महापुरुष ईसाके ये वचन—'धन्य है दयावान् मनुष्योंको! क्योंकि दयावान् ही दयामय ईश्वरकी दया प्राप्त कर सकता है'—वालिकाके सरल हृदयपर जादूका-सा असर करते और इन्हें स्मरणकर वह मानो दयाकी जीती-जागती मूर्ति बन जाती। अपने भावी रानी-पदका किञ्चित् भी अभिमान न कर वह खानेको सामान लेकर महलोंसे उतर आती और गरीब-भूखोंको खिलाकर बड़ी ही सन्तुष्ट होती।

एलिज़ावेथ लड़कपनसे ही अपने ऊपर ईश्वरकी अपार दयाका अनुभव करने लगी। राजा हरमैन भी एलिज़ावेथको

हृदयसे प्यार करते थे। इसीसे वह बालिका एक अपरिचित परिवारमें आकर भी अपनी मन्द और सरल मुसकानको तथा मनकी प्रसन्नताको पूर्ववत् कायम रख सकी थी। दैव-दुर्विपाकसे इसी समय एलिज़ाबेथको अपने पितृतुल्य भावी ससुर राजा हरमैनका दुःसह वियोग सहना पड़ा और अब उसका सारा भार रानी सोफियापर आ पड़ा। रानीका स्वभाव विलासप्रिय था, उसे एलिज़ाबेथकी आठों पहरकी धर्मचर्चा बिल्कुल नहीं सुहाती, वह उसे एक सुचतुरा, रसिका, रत्नालङ्कारविभूषिता और सौभाग्यगर्विता राज-रानीके रूपमें देखना चाहती थी। परन्तु ईश्वरने एलिज़ाबेथको इस संसारमें रानी बननेके लिये ही नहीं भेजा था। वह तो ईश्वरसे प्रेरित होकर भगवद्भक्तिमय जीवन बिताने और अपने प्रेम तथा करुणाद्वारा दुखी जीवोंका दुःख दूर करने एवं उन्हें शान्ति प्रदान करनेके लिये आयी थी। लोग उसके स्वभावके विरुद्ध उसे सांसारिक सुखोंमें फँसानेका निष्फल प्रयत्न करने लगे। इस समय संयोगसे उसके भावी पति राजकुमार लुई भी विद्याभ्यासके लिये परदेशमें गये हुए थे। ऐसी अवस्थामें निराधारा एलिज़ाबेथको रानी सोफियाकी देख-रेखमें बड़ी ही कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। इस दुःखकालमें वह विशेषरूपसे ईश्वरमें मन लगाने लगी और शान्ति, विनय, सहनशीलता तथा मैत्री इन चार गुणोंको प्राप्त करनेके लिये भगवान्से कातर-प्रार्थना करने लगी।

एक दिन किसी त्यौहारके दिन रानी सोफियाकी आज्ञानुसार एलिज़ाबेथ सुन्दर बहुमूल्य गहने-कपड़ोंसे सुसज्जित हो उपासना-मन्दिरमें जा रही थी। प्रवेश करते समय अचानक उसकी दृष्टि मृत्युके लिये तैयार क्रूसविद्ध ईसामसीहके चित्रपर पड़ी, जिसे देखते ही वह अपना मुकुट उतार सजल नेत्र हो, सिर नवाकर प्रार्थना करने लगी। झुके हुए नंगे सिरके बिखरे बाल देखकर सोफियाने बड़ी ही रुखाईसे कहा—'क्या तुमसे मुकुटका भार भी नहीं सम्हाला जा सकता जो सिर उघाड़कर निर्लज्जकी तरह बैठ गयी हो? इससे हमारी कितनी निन्दा होती है?' एलिज़ावेथने बड़ी ही विनयके साथ जवाब दिया—'प्रभु ईसाके मस्तकपर काँटोंका मुकुट देखते हुए सोनेका मुकुट धारणकर उपासना करनेसे क्या प्रभुका अपमान नहीं होगा? क्षमा करो, मा! मुझसे ऐसा न होगा।' इतना कहते-कहते प्रभुकी दयाका स्मरण आनेसे उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी! रानी सोफियाकी पुत्री राजकुमारी एग्नेसको भी एलिज़ावेथकी ये बातें बहुत बुरी मालूम होती थीं, इससे उसने भी एक दिन एलिज़ावेथसे कहा कि 'यदि तुम्हारे ऐसे ही लक्षण रहे तो तुम मेरे भाईकी धर्मपत्नी होनेकी आशा छोड़ दो, तुम-जैसी स्त्रियाँ तो यहाँ दासी होने योग्य हैं।' किन्तु राजकुमारी एग्नेसकी इन बातोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

राजकुमार लुई शिक्षा प्राप्तकर विदेशसे लौट आये। वे धीर, वीर, उदार और निर्भीक युवक हैं। उनका विशाल हृदय करुणासे पूर्ण है। राजमहलकी स्त्रियाँ एलिज़ाबेथका चरित्र सुना-सुनाकर उसके विरुद्ध राजकुमारको उभाड़ने लगीं, परन्तु भगवत्कृपासे फल उलटा ही हुआ। इन बातोंको सुनकर राजकुमार लुईका मन एलिज़ाबेथकी ओर अधिक आकर्षित हो गया और वह मन-ही-मन उसके गुणोंकी तारीफ़ करने लगे। राजकुमारने राजपरिवारकी स्त्रियोंसे कहा कि 'पृथ्वीपर सोनेसे मढ़े हुए पर्वतसे भी मैं एलिज़ाबेथके धर्मभावोंको अधिक क़ीमती समझता हूँ।' राजकुमार लुई बालिकाका उदास मुख देखकर उसे प्रेमपूर्वक धीरज दिया करते कि 'थोड़े दिन और धीरज रक्खो, अब यह दुःख शीघ्र ही निवृत्त हो जायगा।' इन प्रेममय शब्दोंसे स्नेह-वञ्चिता बालिका अपने कोमल हृदयमें राजकुमारके प्रति कितने निष्कपट प्रेमका अनुभव करती थी—इसका कौन वर्णन कर सकता है?

अब राजकुमार लुईकी अवस्था १९ वर्षकी हो गयी, उसकी नाबालिग उम्र बीत गयी। सन् १२२० ई० में वार्टबर्ग (Wartburg) महलके गिरजेमें बड़ी धूमधामसे एलिज़ाबेथके साथ राजकुमार लुईका विवाहकार्य सम्पन्न हो गया। साहस, वीरता, विनय, उदारता, धर्मभाव और मितभाषण आदि गुणोंसे

युक्त राजकुमार अपने सुसंगठित बलवान् देह, उज्ज्वल तथा विशाल ललाट एवं मुखकी सुन्दर छटासे बड़ा ही तेजस्वी प्रतीत होता था।

बहुत दिनोंतक सास, ननद आदिके दिये हुए दुःखोंको सहनेके उपरान्त अब एलिज़ाबेथ अपने धार्मिक और हृदयवान् स्वामीसे मिलकर आनन्दकी लहरको दबा न सकी। राजकुमारके पूर्ण, पवित्र प्रेमसे एलिज़ाबेथने मानो समस्त पार्थिव ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया।

राजकुमार लुई भी धर्मशीला पत्नीके भक्तिपूर्ण पवित्र हृदयपर अधिकार जमाकर स्वर्गीय सुखका अनुभव करता हुआ राजमहलके रत्न-माणिक्य-जनित ऐश्वर्यको तुच्छ मानने लगा। शक्तिशाली और धार्मिक युवकका जब भक्ति और प्रेममयी सुशीला रमणीसे मिलन होता है तब उनका दाम्पत्यजीवन इसी प्रकार अत्यन्त आनन्दमय हो उठता है।

कुछ दिनों बाद राजकुमार लुई अपनी धर्मशीला पत्नी एलिज़ाबेथसहित सिंहासनपर बैठा। उनके चरण-स्पर्शसे स्वर्ण-सिंहासन पवित्र हो गया। यद्यपि रानी एलिज़ाबेथका ध्यान सदा अपने लक्ष्यपर लगा रहता था तथापि वह अपने सांसारिक स्वामीकी परिचर्या करनेमें कभी त्रुटि नहीं करती। राज-काजसे थक जानेपर राजा लुई रानीकी सेवा-शुश्रूषासे पुनः स्वस्थ और सबल हो पूर्ण आनन्दका अनुभव करता। राजाके स्थानान्तर जानेपर रानी पातिव्रत-धर्मके अनुसार न तो शृङ्गार करती और

न स्वादिष्ट भोजन ही करती। कभी-कभी तो वह एकदम अनशन-व्रत किया करती और अपना अधिकतर समय भगवान्की उपासनामें ही बिताती। इसपर राज-परिवारकी दूसरी स्त्रियाँ उसकी दिल्लगी उड़ाया करतीं, पर वह उनकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देती। इस प्रकार दिनोंदिन संसारसे उसका वैराग्य दृढ़तर होने लगा।

महापुरुषने कहा है कि 'अपने सम्पूर्ण हृदयकी समस्त शक्ति लगाकर प्राणपनसे ईश्वरसे प्रेम करो। अपने पड़ोसीसे अपने ही सदृश प्रेम करो।' इन वचनोंका पालन करनेके लिये एलिज़ाबेथ अधीर हो उठी और इस प्रकारका प्रेम प्राप्त करनेके लिये वह अपना अधिकांश समय उपासना और प्रार्थनामें ही बिताने लगी। रातके समय स्वामीको तो सोते ही नींद आ जाती; परन्तु राम-दिवानी एलिज़ाबेथकी आँखोंमें नींद कहाँ? वह तो परम प्रियतम पतिके भी परमपति ईश्वरके ध्यानमें मग्न हो जाती। उच्च अवस्था प्राप्त करनेके लिये विना किसी प्रकारका कष्ट अनुभव किये वह धर्मके कठोरसे भी कठोर नियमोंका सहर्ष पालन करती थी। उसका इन्द्रियदमन संन्यासियोंसे भी कठोर था। वह भोग-विलास, भूख-प्यास और नींद-आरामकी कुछ भी परवा न कर परमात्मामें मन लगाये रहती। कमालने कहा है—

समझ-बूझ दिल खोज पियारे, आशिक होकर सोना क्या?
जिन नयनोंसे नींद गँवाई तकिया लेप बिछौना क्या?

रूखा-सूखा रामका टुकड़ा चिकना और सलोना क्या ?
कहत कमाल प्रेमके मारग सीस दिया फिर रोना क्या ?

एलिज़ावेथ जब राजमहलमें पतिके साथ अतिथियोंसहित भोजन करने बैठती तो सबको विविध भोजन परोसकर स्वयं निरामिष सादा भोजन करती, तनिक-से मधुके साथ साधारण रोटियाँ खा लिया करती और अपने मीठे वचनोंमें सबको इस प्रकार भुलाये रखती कि किसीका इस बातकी ओर ध्यान भी नहीं जाता कि उसने अपने लिये क्या परोसा है। स्वामीके आग्रहसे दो-एक बार राजसी पोशाक पहननेके अतिरिक्त वह सर्वदा साधारण वस्त्र ही पहनती। परन्तु वह साध्वी रमणी सादी पोशाकमें भी दिव्य प्रकाशसे झलक उठती।

इस समय एलिज़ावेथका हृदय प्रेमसे पूर्ण हो गया था, उसने हृदयके इस विशुद्ध प्रेमको तत्काल ईश्वरके अर्पण कर दिया। बाल्यकालका दीन-भाव दिनोंदिन बढ़ने लगा। छोटे-बड़े सबके साथ समान प्रेम करनेपर भी ईश्वरके प्रति उसका असीम प्रेम और बालकवत् सरल विश्वास था। उपासना-गृहकी घण्टी बजते ही वह आनन्दपूर्वक वहाँ जाकर भक्तिभाव और पवित्र चित्तसे ईश्वर-भजनमें लग जाती। गुरुवारके दिवस बारह कोढ़के रोगियोंके पैर धोकर वह भिखारिणीके वेशमें दीन-भावसे नंगे पैर उपासना-घरमें जाती। रात्रिमें, कष्ट भोगते समयका प्रभुका चित्र सामने रखकर घुटनोंके बल बैठकर वह उनका ध्यान और प्रार्थना

किया करती । पवित्र शुक्रवार (Good Friday) के दिन अपने सेवकोंसे कहती कि 'आज सबके लिये विशेष दीनताका दिन है, इसलिये तुमलोग कोई भी मेरे प्रति जरा-सा भी सम्मान मत दिखाओ ।' इसके बाद वह शहरके बीच मैदानमें जाकर एकत्रित असंख्य भिखारियोंको खुले हाथों दान देती । दुखी जीवोंके प्रति इस करुणामयी नारीका असीम प्रेम था । उसके हृदयसे दयाका अखण्ड स्रोत बहकर जीवोंके तप्त हृदयको सदा शीतल किया करता । एलिजाबेथ राजरानी होकर भी अपने उच्च पदका कुछ विचार न कर, हजारों आज्ञाकारी सेवकोंके रहनेपर भी प्रसन्नचित्तसे दरिद्र और पीड़ित मनुष्योंकी झोपड़ियोंमें स्वयं जाकर उनपर प्रेम दिखाती और उनकी दुःख-गाथा सुनकर उनके आँसू पोंछनेमें तनिक भी सङ्कोच न करती । महलमें भोजन बनाकर उनके लिये भेजा करती । इस प्रकार वह केवल उनके देहकी सेवा करके ही नहीं रह जाती, प्रत्युत उनके कल्याणार्थ उन्हें प्रभुकी लीलाएँ भी सरल भाषा और मधुर स्वरमें सुनाया करती । इन सब कार्योंमें उसे बहुत शान्ति मिलती । कुष्ठ-रोगसे पीड़ित मनुष्योंके पास,—जिनकी परछाईं पड़नेपर भी हमें संकोच होता है,—वह स्नेह-पूर्वक बैठकर उनकी सेवा करती, जिससे उनके जलते हुए हृदयको बड़ी शान्ति मिलती । पतिकी आज्ञासे उसने राजमहलके निकट ही कोढ़ी-रोगियोंके लिये एक अस्पताल बनवा लिया, जिसमें कितने ही निराधार रोगियोंको आश्रय मिल गया । रानी स्वयं

अपने हाथों उन्हें खिलाने-पिलानेमें और उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेमें परम सन्तोष मानती ।

सन् १२२३ ई० में एलिज़ावेथको एक पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई, जिससे राज्यमें सर्वत्र आनन्द छा गया । एक दिन रानी एलिज़ावेथ चुपचाप अपने उस नवजात शिशुको ईश्वरके चरणोंमें अर्पण कर इस प्रकार प्रार्थना करने लगी, 'प्रभो ! तुम्हारी दी हुई यह वस्तु तुम्हें ही अर्पण करती हूँ । तुम इसको ग्रहण करो और अपना सेवक बनाकर दिव्य आशीर्वाद दो ।'

आजकल अधिकांश स्त्री-पुरुष भक्तिके नामपर अपने सांसारिक कर्तव्य-कर्मकी जिम्मेदारीकी ओरसे लापरवाह हो प्रमाद कर बैठते हैं, उनको हमारी चरित्रनायिकाके जीवनसे शिक्षा लेनी चाहिये । एलिज़ावेथ केवल सेवापरायणा और भक्तिमती स्त्री ही नहीं थी, वह राजकार्य भी बड़ी चतुराई, निर्भयता एवं दृढ़ताके साथ सँभालती थी । एक समय सन् १२२५ ई० में राजा लुई युद्धके लिये किसी दूर देशमें चले गये थे । पीछेसे प्रजापालनका सारा भार एलिज़ावेथपर आ पड़ा । उसने बड़ी ही योग्यतासे सारा कार्य सम्पादन किया । दैवयोगसे उसी समय देशमें भयङ्कर अकालके कारण बहुत-से लोग क्षुधापीड़ित हो आर्तनाद करने लगे । राजकर्मचारियोंने अकाल-पीड़ित प्रजाके कष्ट-निवारणकी तरफ तनिक भी ध्यान नहीं दिया । परन्तु प्रजावत्सला दीन-दयामयी एलिज़ावेथ कब चुप

बैठनेवाली थी ? अधिकारियोंकी परवा न कर रानीकी हैसियतसे उसने अपनी शक्तिका प्रयोगकर राजकोष और भण्डारके द्वार खुलवा दिये और इस प्रकार वह खुले हाथों अकालपीड़ित नर-नारियोंको उनकी आवश्यकतानुसार अन्न और द्रव्य बाँटने लगी। राजा लुईके भ्राता हेनरी तथा अन्यान्य राजकर्मचारी रानीकी इस स्वच्छन्दतासे नाराज़ हो उसके विरुद्ध आन्दोलन करने लगे तथा राजकोषको नष्ट करनेकी कार्रवाईपर राजाका भय दिखाने लगे। परन्तु रानी एलिज़ाबेथ उनके प्रतीकारका उत्तर देनेमें समय और शक्तिका खर्च न कर हँसती हुई बिना किसी प्रकारके संकोच या भयके अपने सात्त्विक कार्यमें लगी रही।

उसने अपने महलके पास जो अस्पताल बनाया था, उसीमें एक विभाग बालकोंके लिये भी खुलवा दिया, जिसमें बहुसंख्यक अनाथ बच्चे भी रहने लगे। उनको एलिज़ाबेथ स्नेहमयी जननी-की तरह प्यार करती और वे सब भी उसे 'माँ माँ' कहकर पुकारा करते। एक बार एक नन्हें-से बालकको कुष्ठ-रोग हो गया। उसके माता-पिता भी उसे छोड़कर चले गये। उसको देखकर एलिज़ाबेथ-को बड़ी दया आयी। वह उसे प्रेमके मारे अस्पतालमें न रख सकी। उसे अपने घरमें लाकर स्वयं उसकी सेवा करने और उसका पुत्रवत् पालन करने लगी। इतना ही नहीं, एलिज़ाबेथ उन दुखी मनुष्योंके, जो कर्ज़दार होकर कैदखानेमें पड़े थे, छुटकारेके लिये भी प्रयत्न करती। कितने ही कैदियोंके पैरोंमें

कठिन लोहेकी बेड़ियोंसे घाव हो गये थे, उनकी बेड़ियाँ खोल वह घावोंको अपने हाथोंसे धोकर मरहम-पट्टी किया करती और उनके पाप नाश होनेके लिये सच्चे अन्तःकरणसे भगवान्‌से प्रार्थना किया करती।

कुछ समय बाद राजा लुई लौटकर आये। राजकर्मचारीगण राजाकी अभ्यर्थना कर उन्हें महलमें ले गये। रानीपर लोगोंका क्रोध अब भी पूर्ववत् विद्यमान था। सबने मिलकर उसके विरुद्ध राज्यका सञ्चित कोष नष्ट करनेका अभियोग उपस्थित किया। सब वृत्तान्त सुनकर राजा मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए उन्हें समझाकर कहने लगे—'भाइयो! रानीने क्या बुरा किया है? राज्य तो लुटा ही नहीं दिया? वह ईश्वरके नामपर जो कुछ भी करना चाहे उसमें कोई भी बाधा न देकर, सबको उसकी सहायता करनी चाहिये। दीन-दुखियोंको भिक्षा देनेसे राज्यका दीवाला नहीं निकला करता। ईश्वरके नामपर दुखियोंको जो कुछ भी दिया जायगा उससे हजारों गुना ज्यादा वह हमलोगोंको देगा।' राजाके इन सुन्दर वाक्योंसे सब कर्मचारीगण शान्त हो गये।

इसके बाद राजा लुई रानी एलिज़ाबेथके पास जाकर उससे अकाल-पीड़ितोंकी दशा पूछने लगे। एलिज़ाबेथने स्वामीके दर्शन-कर चन्द्रोदयसे रजनीकी भाँति आनन्दसे पुलकित हो आदिसे अन्ततक सारी कथा कह सुनायी। राजा प्रमुदित होकर रानीकी प्रशंसा करने लगे। धन्य है! एक दिन वह था जब ईसाई-समाज-

में ऐसे-ऐसे राजा-रानी मौजूद थे। एक आजका ईसाई-शासन है जो ईसाई कहाते हुए भी निर्दोषों और सज्जनोंपर अत्याचार करनेमें ही अपना गौरव समझता है। समयका कैसा परिवर्तन है ?

द्वन्द्वोंसे भरा संसार-चक्र अनवरत गतिसे सदा घूमा ही करता है। दिनके बाद रात, सुखके बाद दुःख, प्रकाशके बाद अन्धकार और जीवनके बाद मृत्यु—इस प्रकार क्रमसे सब बारी-बारीसे ऊपर-नीचे आते-जाते रहते हैं। अब एलिज़ाबेथके भी भौतिक सुखके दिन बीतने लगे, दुःखके दिनोंकी बारी आने लगी। सन् १२२७ ई० में यूरोपके अनेक ईसाई नरेशोंने विधर्मियोंके हाथोंसे अपने परम पुनीत तीर्थ जेरूसलमको छुड़ानेके लिये युद्ध-यात्राका विचार किया। कर्त्तव्यसे प्रेरित हो राजा लुई भी इस धर्म-युद्धमें सम्मिलित होनेका विचार करने लगे। एलिज़ाबेथ निकट भविष्यकी विपत्तिके सूचक असगुन देखने लगी। वह घबरायी और एक दिन स्वामीके सामने उसकी आँखोंमें पानी भर आया। रानीकी यह दशा देख राजा लुई उसे सान्त्वना देकर कहने लगे कि 'प्रिये! भगवत्प्रेमके आकर्षणसे उनके धर्मकी रक्षाके लिये मैं रणक्षेत्रमें जा रहा हूँ। ऐसे अवसरपर तो तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये। क्या प्रभुके कार्यमें कभी विषाद करना उचित है ?' धर्मपरायणा एलिज़ाबेथ स्वामीको कर्त्तव्य-विमुख कैसे कर सकती थी ? वह बोली—'स्वामिन्! जब प्रभु आपको अपने कामके लिये आवाहन कर रहे हैं, तब मैं कैसे रोक सकती हूँ ? मैं तो आपके सहित

अपनी सभी वस्तुएँ उनके अर्पण कर चुकी हूँ। उनके पवित्र कार्यके लिये जाते हुए आपको रोकनेका मेरा कोई अधिकार नहीं है। जाइये प्राणनाथ! खुशीसे जाइये, प्रभु आपका कल्याण करें।'

युद्धमें जानेकी तिथि निश्चित हुई। राजा अपने सेवकों और प्रजाजनोंसे विदा हो, जननी, पत्नी और स्नेहके पुतले बच्चोंके पास उनसे विदा माँगनेको गये। वह प्रेमवश गद्गद हो गये। कुछ देरतक तो उनके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकल सका। फिर सम्हलकर प्रणाम करते हुए उन्होंने गम्भीर भावसे मातासे कहा—'माँ! आपकी देख-रेखका भार तो मेरे दोनों भाइयोंपर है लेकिन एलिज़ावेथको मैं केवल आपके हाथोंमें सौंपता हूँ। आपके सिवा इसकी मर्म-व्यथाको समझनेवाला यहाँ दूसरा कोई नहीं है।' राजा विदा हुए। पर एलिज़ावेथ घरमें न रह सकी, वह राज्यकी सीमातक स्वामीको पहुँचानेके लिये साथ गयी। अन्तमें विदा होते समय राजाने कहा—'प्रिये! भगवान् तुम लोगोंका कल्याण करें। ईश्वर-प्रेमकी यत्नपूर्वक रक्षा करते रहना। देखना, प्रार्थनाके समय मुझको भूलना नहीं।'

राजा लुई रणक्षेत्रकी ओर चल दिये। एलिज़ावेथ जबतक स्वामी दृष्टिगोचर होते रहे, तबतक वहीं खड़ी देखती रही। तदनन्तर वहाँसे लौटकर राजमहलमें आयी और अपने सदाके

नियमके अनुसार उसने सुन्दर वस्त्राभूषणोंको त्यागकर साधारण वस्त्र पहन लिये।

राजा लुई जहाजपर सवार हुए। वहीं उनपर भीषण ज्वरने आक्रमण किया। बीमारी बढ़ने लगी। राजाने अनुमान किया कि अब अन्तकाल निकट आ पहुँचा है। अतः उन्होंने अपने स्त्री-पुत्रोंके नाम वसीयतनामा तैयार कर अपने आपको ईश्वरके हाथोंमें सौंप दिया। मृत्युके समय उनके चेहरेपर अपूर्व तेज था। उन्हें प्रतीत हुआ कि मानो श्वेत कपोत पक्षी आकाशमें उनके लिये राह देख रहे हैं। तदनन्तर ही उनका जीवात्मा भी शरीरसे उड़ गया। स्वामीका परलोक-गमन देख सारे सैनिक मोहके मारे शोक-सागरमें पड़कर गोते खाने लगे।

रानी एलिज़ाबेथके पास यह हृदय-विदारक समाचार पहुँचा, तो वह शोकसे मूर्छित हो जड़कटे पेड़की तरह गिर पड़ी। प्राणपखेरू देह-पिञ्जरको छोड़कर उड़नेकी तैयारी करने लगे। दासियाँ किसी प्रकार होशमें लाकर रानीको शान्त करनेका प्रयत्न करने लगीं। बहुत देर बाद मूर्छा टूटनेपर धैर्य और शान्तिके लिये उसने ईश्वरसे प्रार्थना की। वह ईश्वरके स्वरूपमें निमग्न हो गयी और उसे प्रतीत होने लगा मानो अन्तरमें कोई सान्त्वना देता हुआ उससे कह रहा है कि 'मैंने जो कुछ किया है सो बहुत अच्छा किया है। इसका गूढ़ रहस्य तेरी समझमें

पीछेसे आयगा ।' इस आश्वासनवाणीसे उसका चित्त कुछ शान्त हुआ ।

युवा अवस्थामें भी भक्तिके प्रभावसे रानी एलिज़ाबेथ वैधव्य-दुःखको धीरताके साथ सहती हुई ईश्वरमें आस्था स्थापन-कर अपना जीवन अधिकाधिक प्रार्थना, उपासना और दरिद्र-नारायणकी सेवामें बिताने लगी । राजमाता सोफियाने पुत्र-वियोगसे दुखी होनेपर भी पुत्रवधूको हृदयसे लगाकर किसी प्रकार कुछ शान्ति प्राप्त की । वह एलिज़ाबेथको सदा अपने पास रखती और सर्वदा उसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा किया करती ।

भगवान्‌की दयाके कई तरीके हैं । वे भक्तोंको अपनी दयाके भिन्न-भिन्न रूपोंका दर्शन करवाया करते हैं । उन्हीं रूपों-मेंसे एक है धन-जन इत्यादि सांसारिक आसक्ति और व्याधिकी समस्त वस्तुएँ हरण कर भक्तको सब ओरसे निश्चिन्तकर उसे अपनेमें मन लगानेका मौका देना । एलिज़ाबेथसे भगवान्‌ने कहा था कि 'इसका गूढ़ रहस्य तेरी समझमें पीछेसे आयगा ।' उसीको समझानेके लिये अब मानो वे उसका विस्तार करने लगे । राजा लुईके भ्राता हेनरी तथा अन्यान्य कर्मचारीगण मौका पाकर अपना पुराना द्वेष निकालनेके लिये एलिज़ाबेथके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे और उनपर नाना प्रकारके अत्याचार करने शुरू कर दिये । सबने मिलकर विधवा रानीपर यह अभियोग लगाया कि एलिज़ाबेथने जादू करके राजा लुईको वशमें कर राज्यका

सञ्चित कोष मनमाने तौरपर लुटाकर नष्ट कर दिया। अत्याचारकी पराकाष्ठा होने लगी। हेनरीने बलपूर्वक राजसिंहासनपर अपना अधिकार जमाकर साध्वी भाभी एलिज़ाबेथको बिना कुछ साथ लिये तुरन्त देशसे बाहर निकल जानेकी कठोर आज्ञा दी। इतना ही नहीं, यह भी घोषणा कर दी गयी कि राज्यमें जो व्यक्ति इसे आश्रय देगा या अन्य किसी प्रकारकी सहायता करेगा वह दण्डका पात्र समझा जायगा। इस प्रकारकी अत्याचारी आज्ञाके बाद हेनरीके दो नौकर यमदूतकी तरह एलिज़ाबेथके पास जाकर उसे धमकाते हुए राजाज्ञाका वृत्तान्त सुनाकर बोले कि 'राज्यका कोष नष्ट करनेके अपराधमें तुम्हारी सारी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गयी है। तुमको इसी क्षण राजमहल छोड़कर देशसे बाहर निकल जाना होगा।' राजमाता सोफियाने नौकरोंको धमकाकर बहुतेरा समझाया पर उस बेचारीका कुछ भी वश न चला। दुर्दान्त राज-कर्मचारी राजविधवा एलिज़ाबेथको राज-महलसे बाहर ले आये। दरवाजेके बाहर दासी बच्चोंको लिये हुए उदास-मुख खड़ी थी। एलिज़ाबेथने छोटे बच्चेको गोदमें उठा लिया और शेष दोनों बालकोंके हाथ पकड़कर वह राजमार्गसे शहरके बाहर जाने लगी। राज-दण्डके भयसे आज कोई भी इस विधवा साध्वी रानीको सहारा देनेवाला नहीं है। दूधके फेन-सी सफेद कोमल शय्यापर सोनेवाले सुकुमार बालक आज नंगे पाँव पैदल जा रहे हैं; उनके खाने-पीने, सोने-रहनेका कोई

ठिकाना नहीं है । गरीबोंको आश्रय देनेवाली, दीनोंकी जननी आज स्वयं एक निराश्रयाकी तरह निर्दयताके साथ देशसे बाहर निकाली जा रही है । हा ! स्वार्थपरता और अधिकारका मद क्या नहीं करा देता ?

इस दृश्यको देखकर प्रजाके नेत्रोंसे करुणाके आँसू बहने लगे; परन्तु साध्वी एलिज़ाबेथके मुख-मण्डलपर शोकका ज़रा भी चिह्न नहीं है । वह धैर्यशीला देवी इसमें भी अपने दयालु प्रभुकी अनुपम दयाका अनुभव करती हुई सदाकी भाँति प्रसन्न है, उसके चेहरेपर दिव्य तेज छिटक रहा है ।

प्रेमी पाठक-पाठिकाओ ! शायद आपलोगोंके मनमें इस दुःखद दृश्यको देखकर दया आती होगी और सम्भवतः इसके लिये आप हेनरीको दोषी समझते होंगे । अवश्य ही निरपराधको स्वार्थवश कष्ट पहुँचानेके हृदयहीन कार्यके लिये हेनरी सर्वथा दोषी और दण्डका पात्र है, पर एलिज़ाबेथको कष्ट पहुँचानेमें तो भगवान्‌की दया भरी हुई है, हेनरी तो इसमें निमित्तमात्र है । यदि ऐसी घटना न घटती तो आज एलिज़ाबेथके सुयशको कौन जान सकता ? जबतक सोना भलीभाँति तपाकर शुद्ध नहीं किया जाता तबतक उसकी कदर नहीं होती । हीरे, माणिक जबतक तेज और तीखे अस्त्रोंद्वारा अच्छी प्रकार तराशकर सुन्दर और चिकने नहीं बनाये जाते, तबतक उन्हें कोई पसन्द नहीं करता । ईश्वर भी अपने भक्तरूपी रत्नोंको संसारमें चमकानेके लिये बहुत-

से तेज-तीखे शस्त्रोंसे काम लिया करते हैं । भगवान्‌के इन तीक्ष्ण-धार शस्त्रोंकी चोटको संसारी और विषयी मनुष्य तो दुःखरूप मानते और ईश्वरका कोप समझते हैं, परन्तु भक्तको इसमें बड़ा ही आनन्द मिलता है। वह जानता है कि मैं इन अस्त्रोंद्वारा ही सचमुच खूबसूरत बनकर अपने प्रियतमका प्रियपात्र बन सकूँगा । बच्चेके मैलके रगड़-रगड़कर उतारनेमें और उसे नहला-धुलाकर स्वच्छ करनेमें माता उसके रोनेकी तनिक भी परवा नहीं करती । इसी प्रकार भगवान्‌का भी रगड़ा लगा करता है। प्रियतमके पास पहुँचनेके लिये कैसी स्थिति होनी चाहिये, प्रियतमके प्रेममें मतवाले 'राम' इसका बड़ा ही मनोहर, सरस और आदर्श वर्णन करते हैं—

'जबतक तुम कंघीके समान अपने अहङ्काररूपी सिरको ज्ञानरूपी आरेके नीचे नहीं रक्खोगे तबतक उस प्यारेके सिरके बालोंको नहीं प्राप्त हो सकते । जबतक सुरमेकी तरह पत्थरके नीचे पिस न जाओगे, यथार्थ प्रियतमकी आँखोंतक नहीं पहुँच सकते । जबतक मोतीकी तरह तारसे नहीं छिदोगे, प्यारेके कानतक नहीं पहुँच सकते । ज्ञानी कुम्हार ! जबतक तेरी अहङ्काररूपी मिट्टीके आबखोरे न बना लेगा तबतक प्यारेके लाल अधरोंतक तू न पहुँच सकेगा । जबतक कलमके समान सिर चाकूके नीचे न रख दोगे, कदापि उस प्यारेकी अँगुलियोंतक नहीं पहुँच सकते । जबतक मेहँदीके समान पत्थरके नीचे

पिस न जाओगे तबतक प्यारेके चरणोंतक कदापि नहीं पहुँच सकते। जबतक फूलकी तरह डालीसे अलग नहीं किये जाओगे, प्यारेतक किसी सूरतसे पहुँच नहीं सकते। बाँसुरीके समान सिरसे पैरतक अहङ्कारसे खाली हो जाओ, नहीं तो बाँसुरी बजानेवाले प्यारेके ओठोंका चुम्बन मिलना कदापि सम्भव नहीं।'

वह परम प्यारा जब प्रेमवश अनुग्रह करता है, तभी विपत्तियोंके समूह इकट्ठे होकर आया करते हैं। अस्तु।

रात्रिका समय है। भयंकर जाड़ा पड़ रहा है। एलिज़ा-वेथ साधारण-सा कपड़ा पहने शिशुओंको साथ लिये जाड़ेसे काँपती हुई द्वार-द्वार घूम रही है। हेनरीके गुप्तचर छायाकी भाँति पीछे लगे हैं। उनके भयसे कोई भी उसे आश्रय नहीं देता। निरुपाय हो एलिज़ावेथ एक सरायके दरवाजेपर पहुँची और सरायवालेसे आश्रयकी भिक्षा माँगती हुई कहने लगी—'भाई! संसारकी सब सुविधाओंसे वञ्चित 'एक असहाया विधवा नारी शीतसे अपने बच्चोंकी रक्षाके लिये तुम्हारे आश्रयकी भीख माँगती है।' विधवा रानीके ये मर्मस्पर्शी वचन सुनकर सराय-वालेका जाड़ेसे जमा हुआ हृदय भी पिघल गया, उसने एलिज़ा-वेथको एक कोठरी बता दी। इस कोठरीमें पहले सूअर रहा करते थे। महलोंमें रहनेवाली राजरानी एलिज़ावेथ प्रारब्धवश आज सूअरोंके रहनेके स्थानमें बैठी है। थके हुए बच्चोंको तो वहाँ

पड़ते ही नींद आ गयी, परन्तु एलिज़ाबेथको नींद कहाँ ? वह सदाकी भाँति बच्चोंके पास बैठकर प्रभु-प्रार्थना करने लगी। अधिक रात्रि बीतनेपर, जब चारों तरफ निस्तब्धताका राज्य था, एक उपासना-मन्दिरमें घण्टी बजी। यह उपासना-गृह किसी समय एलिज़ाबेथकी ही इच्छा और उसीके धनसे बना था। घण्टीकी आवाज़ सुनकर एलिज़ाबेथ बालकोंको साथ लेकर वहाँ प्रार्थना करने गयी। उसके हृदयसे उस समय निम्नलिखित हृदयस्पर्शी प्रार्थना निकली—

'प्रभो ! तेरी इच्छा पूर्ण हो। कल मैं रानी थी। मेरी कितनी सम्पत्ति और हुकूमत थी। आज मैं राहकी भिखारिन हूँ, जगत्‌में कोई मुझे आश्रय देनेवाला नहीं ! इसपर भी मैं तेरा आश्रय पाकर सुखी हूँ। प्रभो ! तू अपना आश्रय कभी न छीन; मुझे चाहे जहाँ, चाहे जैसे रख, पर अपने आश्रयसे कभी वञ्चित न कर। सुख और वैभवके दिनोंमें मैंने तेरी खूब सेवा की होती, तो आज मुझे इससे भी कितना अधिक आनन्द मिलता।'

बालक क्षुधासे पीड़ित हो मातासे खानेको माँगने लगे, परन्तु एलिज़ाबेथके पास तो एक मुट्ठी चने भी नहीं थे। इस प्रकार किसी तरह दुःखकी पहली रात बीती। प्रातःकाल क्षुधार्त्त बालक मातासे राजमहलमें चलकर भोजन देनेके लिये कहने लगे, वह क्या उत्तर देती ? इधर-उधर आश्रय खोजने लगी, परन्तु राजभयसे कौन आश्रय देता ? अन्तमें एक उपासना-

गृहके धर्मगुरुने साहस करके उसे रहनेको स्थान दिया। एलिज़ाबेथके पास सिवा एक-दो साधारण गहनोंके और कुछ भी नहीं था। उसीको बन्धक रखकर वह कुछ भोजन-सामग्री लायी। और दासीसहित सबने खाकर पापी पेटकी आगको शान्त किया।

हेनरीके गुप्तचरोंने यहाँ भी एलिज़ाबेथको सुखसे नहीं रहने दिया। अब वह अपनी सन्तानोंका कष्ट नहीं देख सकी। उसने दासीके साथ बच्चोंको परदेशमें किसी सम्बन्धीके यहाँ भेज दिया और स्वयं अकेली ईश्वरके प्रेममें मतवाली होकर जहाँ-तहाँ डोलने लगी।

एलिज़ाबेथके एक मामा धर्म-गुरु थे। जब उनको यह हाल मालूम हुआ, तब वे दया करके उसे अपने पास ले गये और एक सुन्दर मकानमें, जहाँसे गगनस्पर्शी गिरिशृङ्ग, रुपहली बर्फकी सुन्दरता, सुहावना सरोवर और हरे-हरे खेत इत्यादिके प्राकृतिक मनोहर दृश्य दिखायी देते थे, ठहरा दिया। अब एलिज़ाबेथने अपने बच्चोंको भी अपने पास बुला लिया और ईश्वरकी महिमाका गान करती हुई वह वहीं रहने लगी। एक दिन एलिज़ाबेथके मामा ममतावश उससे कहने लगे कि 'बेटी, तू अभी युवा है, निराधार है। मैं चाहता हूँ, तेरा किसी सद्‌गृहस्थ-के साथ पुनर्विवाह हो जाय। बता, तेरी इसमें क्या सम्मति है?' सती एलिज़ाबेथ मामाके ममतापूर्ण शब्दोंको सुनकर बड़ी विनयके

साथ उससे कहने लगी, 'मामाजी ! मेरे स्वामी मुझपर बहुत प्रेम करते थे, मैंने उनके धन-वैभवका मनमाना उपयोग किया था। इसके सिवा इस समय तो मैंने सभी पार्थिव सुखोंको असार, दुःखमय एवं आत्मपतनमें कारण समझकर उनका त्याग ही कर दिया है। मैं अपने प्रभुके साथ रहकर सम्पूर्ण जीवन बितानेका सङ्कल्प कर चुकी हूँ। मेरे स्वामीके परलोक-गमनके पश्चात्, संसारमें जो कुछ थोड़ा-बहुत मेरा बन्धन तथा ममता थी, उससे भी दया करके परमात्माने छुड़ा दिया है। अब मैं परमेश्वरका अचल धाम पानेके लिये सब प्रकारका संयम तथा ध्यान-चिन्तन करती हूँ। अतएव कृपया आप क्षमा करें और भविष्यमें कभी ऐसे विचार मेरे सामने न पेश करें।' धन्य !

इधर हेनरीके अत्याचारोंकी खबरें पाकर देशके प्रतिष्ठित और तेजस्वी वीर पुरुष उत्तेजित हो उठे, परन्तु एलिजाबेथने उन्हें धार्मिक कथाएँ सुना-सुनाकर बड़ी कठिनाईसे शान्त किया। राजा लुईके साथ धर्मयुद्धमें गये हुए सैनिकोंने लौटकर जब यह सारा हाल सुना तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे हेनरीके अत्याचारोंसे दुःखित तो पहलेसे ही थे, पर अब उनसे नहीं रहा गया। उन्होंने हेनरीके जुल्मोंके प्रतिवादका निश्चय कर लिया। पहले उसे समझाना स्थिर हुआ, अतएव कुछ निर्भीक वीर सैनिक प्रतिनिधिके रूपमें राजदरबारमें पहुँचे और उनमेंसे लार्ड वेरिला नामक एक तेजस्वी युवक गम्भीर स्वरसे राजा हेनरीसे कहने लगा—

'महाराज ! आपके कृत्योंसे हमलोगोंके हृदयमें दुःखकी ज्वाला धधक उठी है । जो अपने प्यारे बन्धुओंके साथ ऐसा नीचतापूर्ण व्यवहार कर सकता है, उसका कैसे विश्वास किया जाय कि वह प्रजाका यथोचित पालन करेगा ? आपकी विधवा भाभी साध्वी एलिज़ाबेथ राजमहलमें रहकर आपका क्या अनिष्ट कर सकती थी ? उसको छोटे-छोटे बच्चोंसहित अनाथकी तरह इस प्रकार देशसे निकालकर आपने विश्वासघातकका काम किया है । इससे आपके राज्यपर ईश्वरका भारी प्रकोप होगा । दूसरे देशवासी आपके इस अत्याचारपर आपको धिक्कारेंगे । या तो आप ईश्वरके सामने इसका हृदयसे पश्चात्ताप कर उसे सम्मानसहित वापस यहाँ ले आइये, नहीं तो सत्य समझिये, अब आपका कल्याण नहीं है ।'

जब राजाका सैनिकवर्ग राजाके किसी अत्याचारके विरुद्ध सिर ऊँचा कर लेता है, तब राजाको बाध्य होकर झुकना ही पड़ता है । सेनाके प्रतिनिधिके रोषभरे वचन सुनकर राजा हेनरी यकायक घबड़ा गया और लज्जासे सिर झुकाकर कहने लगा कि–'मुझे अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप है, मैंने बुरी सलाह पाकर ऐसा कर डाला, परन्तु अबसे मैं किसीकी बुरी सलाहपर ध्यान न दूँगा । आपलोग एलिज़ाबेथको उसके बच्चोंसहित यहाँ बुला लाइये । वह जो माँगेगी, मैं उसको वही दूँगा, परन्तु सम्पूर्ण राज्य उसके हाथोंमें सौंप देनेसे वह तमाम ईश्वरकी सेवामें लगा

देगी। इस बातका ख़याल रखना चाहिये।' इसपर लार्ड वेरिलाने उसे समझाया कि 'ईश्वरके कोपसे बचनेका यही तो एकमात्र उपाय है।'

तदनन्तर कुछ खास-खास सैनिक एलिज़ाबेथके पास गये और उसे राज्यमें लौटनेके लिये प्रार्थना करने लगे। परन्तु उसने जाना नहीं चाहा और वह ईश्वरसे कहने लगी—'प्रभो, यह क्या? नरककूपसे एक बार निकालकर फिर उसीमें क्यों डालना चाहते हो? मैं संसारके वैभव नहीं चाहती। उनसे मेरा चित्त चञ्चल हो उठेगा। फिर मैं आपका विशुद्ध प्रेम न पा सकूँगी। नाथ! इस दीना दासीपर दयाकर इसका उद्धार कीजिये।'

सैनिकोंने लौटकर हेनरीको सब वृत्तान्त कह सुनाया, परन्तु कलुषित-हृदय हेनरीने साध्वी एलिज़ाबेथको इतनेपर भी नहीं पहचाना। वह समझने लगा कि एलिज़ाबेथके हृदयमें मुझसे बदला लेनेकी भावना है। अतएव वह भयसे काँप उठा और जननी सोफिया और लघु भ्राताको साथ लेकर एलिज़ाबेथके पास जा उससे क्षमा-याचना करने लगा। एलिज़ाबेथका हृदय स्नेहसे भर आया; वह हेनरीके गलेसे लिपट गयी। स्नेहसे उसका गला रुक गया और उसकी आँखोंसे अश्रुपात होने लगा। उसके हृदयका दिव्य भाव देखकर लोग कह उठे, 'यह एलिज़ाबेथ मानवी नहीं है यह तो देवी है।' इस प्रकारका दृश्य देखकर सभीका हृदय करुणासे भर आया और हेनरीके प्रति उनके प्रतिहिंसाके

भाव समूल नष्ट हो गये। हेनरी भी भाभीका दिव्य व्यवहार देखकर स्थिर न रह सका और बालककी तरह फूट-फूटकर रोने लगा। राजमाता सोफिया पुत्रवधूके प्रेममें अश्रुपात करने लगी। वहाँपर उपस्थित सभी योद्धाओंके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। करुणा-का समुद्र उमड़ पड़ा, इस प्रकार सबके मन अश्रुसलिलपूर्ण करुणा-सागरमें अवगाहनकर निर्मल हो गये। इस प्रेम-सम्मेलनसे चारों ओर आनन्द छा गया। अब एलिज़ाबेथ भी सबके आग्रहको न टाल सकी, उसे अपने बच्चोंसहित राजमहलमें लौट आना पड़ा।

राज-परिवारने एलिज़ाबेथको फिर सांसारिक सुख-वैभवमें फँसानेका बहुतेरा प्रयत्न किया, परन्तु जिसने एक बार उस अद्भुत प्रेमामृतका पान कर लिया, उसे संसारके असार भोग कैसे अच्छे लग सकते हैं? उसका मन तो सदा परमात्माके ध्यानमें लगा रहता था और हाथोंसे वह परमात्माके लिये ही उसके ग़रीब बच्चोंकी सेवा किया करती थी। परन्तु उसे इतनेसे ही सन्तोष नहीं हुआ। वैराग्यकी उत्ताल तरङ्गोंने उसके चित्तको राजमहल-के सुखोंमें रहनेसे क्षुब्ध कर दिया। वहाँके सुख मानो उसे काटने दौड़ते थे। वह एकान्तमें जाकर ईश्वरभजन करनेके लिये व्याकुल हो उठी। राजमहलके ऐश्वर्य या परिवारका प्रेम कोई भी उसे आकर्षित न कर सका। महलसे खाद्य-सामग्री लेकर वह अकेली राजमार्गमें होती हुई गरीबोंकी झोपड़ियोंमें चली जाती। लोग उसे सुना-सुनाकर कहते कि 'देखो, यह रानी बिल्कुल पगली हो गयी

है ।' पर इसका उसपर कोई असर नहीं पड़ता । अन्तमें उसके लिये मारबर्ग-शहरके एक निर्जन मनोरम स्थानमें रहनेका प्रबन्ध कर दिया गया । उपासना, सेवा इत्यादिका वहीं प्रबन्ध हो गया । एलिज़ाबेथ यहाँके निवासियोंके प्रति अपने साथ प्रेम करनेके लिये कृतज्ञता दर्शाती हुई और अपने दोषोंके लिये उनसे क्षमा-प्रार्थना करती हुई नवीन स्थानमें चली गयी । मारबर्गका पूरा अधिकार एलिज़ाबेथको सौंप दिया गया । वहाँके निवासी उसका स्वागत करने लगे, परन्तु उसे यह जन-कोलाहल नहीं रुचा । वह शहर-से तीन मील दूर एक निर्जन पर्णकुटीमें रहकर तपस्या और गरीबोंकी सेवा करने लगी । अपने हाथसे भोजन बनाकर थोड़ा-सा आप खा लेती और बाकी सब गरीबोंको बाँट देती ।

अब एलिज़ाबेथका सुयश चारों ओर फैल गया । रोमके पोप नवम ग्रेगरी उसे भलीभाँति जानते थे । उनकी इच्छा थी कि एलिज़ाबेथ विधिपूर्वक संन्यास धारण करे । इस अभिप्रायसे उन्होंने उसे एक पत्र भी लिखा । परन्तु एलिज़ाबेथमें तो संन्यासियोंसे अधिक वास्तविक संयम था, उसके लिये संन्यास धारण करना कोई कठिन बात न थी, पर उसके चिरहितैषी पादरी कोनराडने कहा कि—'तुम्हें विधिपूर्वक बाह्य संन्यास लेनेकी आवश्यकता नहीं है । तुम्हारे पास कोई अपनी सम्पत्ति तो है नहीं, जो कुछ है सब ईश्वरका है । उसका परमात्माके एक सच्चे विश्वासी सेवककी तरह सदुपयोग करना तुम्हारा धर्म है । तुम्हारे सिवा इसका

उत्तम तरीकेसे सदुपयोग करनेवाला दूसरा नहीं है। तुम इस सम्पत्तिसे दीन-दुखियोंका कष्ट दूर करती रहो।' एलिज़ावेथने इस सलाहका अनादर नहीं किया। मनसे तो वह संन्यासिनी थी ही। वह अपनी सारी सम्पत्ति दरिद्रनारायणकी सेवामें लगाया करती और स्वयं अपने लिये चरखा कातनेसे जो कुछ मिल जाता, उसीमें गुज़र करती। एलिज़ावेथ साधारण-सा वस्त्र पहना करती, पर जब किसीको जाड़ेके मारे काँपते देखती तो वह भी उतारकर उसे पहना देती और स्वयं झोपड़ीमें जाकर अग्नि तापकर अपना शीत निवारण करती।

इसके पूर्वतक तो एलिज़ावेथकी सन्तान उसके पास थी, इसलिये कभी-कभी उनके सुकुमार मुख देखकर उसके हृदयमें मातृ-स्नेह उमड़ आता था। परन्तु अब वह अकेली रहती थी इसलिये उसको किसी प्रकारकी भी आसक्ति नहीं रह गयी थी। एलिज़ावेथ जिस स्थितिके लिये परमात्मासे प्रार्थना किया करती, आज उसको वही स्थिति प्राप्त है। वह दिनमें गरीबोंकी सेवा करती है और रात्रिमें प्रेमविह्वल हो समाधिमें मग्न रहती है। उन दिनों पादरी कोनराड भी मारबर्गमें रहते थे। एलिज़ावेथकी वस्तु-स्थितिके बारेमें वे लिखते हैं—'एलिज़ावेथ निर्जनमें ईश्वरके साथ निवास करती और उनके साथ बातें किया करती थी। जब कभी वह मेरे पास आती तो मुझे उसकी अनुपम मूर्तिमें दिव्य तेज दिखायी देता।'

एक समय एलिज़ावेथ रसोई बनाती-बनाती परमात्माके ध्यानमें निमग्न हो गयी। इसी बीच अकस्मात् उसके कपड़ोंमें आग लग गयी। पर उसे इस बातका पता भी नहीं लगा। जब कपड़ा जलने लगा और आसपासके लोगोंतक उसकी गन्ध पहुँची तब उन्होंने दौड़कर उसे बुझाया। धन्य तन्मयता! आग भी तो भगवान् ही है—

कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय

हियमें न जानि परै कान्ह है कि प्रान है।

एलिज़ावेथके पवित्र जीवनकी आश्चर्यमयी घटनाओंसे लोगोंकी उसपर अधिकाधिक श्रद्धा और भक्ति बढ़ने लगी। सैकड़ों नर-नारी उसके दर्शनके लिये आने लगे और उसकी अमृतमय वाणी-द्वारा शक्तिदायक उपदेश प्राप्तकर अपना जीवन सफल करने लगे। एलिज़ावेथकी धारणा थी कि मनुष्यके हृदयमें पाप-वेदनासे बढ़कर दूसरी कोई वेदना नहीं हो सकती, अतएव पापी ही सबसे ज्यादा करुणा और दयाके पात्र हैं। किसी पापीको देखकर उसका हृदय करुणासे भर जाता और वह उसके लिये एकाग्रचित्तसे नम्र-भावसे प्रार्थना करने लगती, जिसके प्रभावसे उस पापीके हृदयमें दिव्य ज्योतिके उदय हो जानेसे सात्त्विक प्रकाश हो जाता और वह सदाके लिये पाप-कर्मसे निवृत्त हो साधु पुरुष बन जाता। सन्तोंकी यही तो महिमा है।

इस प्रकार एलिज़ावेथ भिखारिनके वेशमें कुटीमें रहने लगी, उसकी इस स्थितिका समाचार उसके पितृराज्य हंगरीतक पहुँचा तो वहाँसे काउण्ट वेनी नामक एक राजदूत हेनरीके पास जाकर अपनी राजकन्याकी स्थिति पूछने लगा। इसपर हेनरीने राजदूतसे कहा कि 'आप स्वयं जाकर देख लीजिये, वह पगली हो गयी है।' हंगरीके राजदूतने मारवर्ग-शहरमें जाकर वहाँके एक निवासीसे एलिज़ावेथका हाल पूछा। इसपर वह बोला कि 'यह रानी मानवी नहीं, देवी है, ईश्वरने उसे हमारे कल्याणके लिये ही यहाँ भेजा है।'

तदनन्तर राजदूत स्वयं एलिज़ावेथके पास पहुँचा और उसे एक साधारण-सा वस्त्र पहिने सूत कातते देखकर शोकसे व्याकुल हो गया। दूतने पूछा कि 'तुम्हारी ऐसी स्थिति कैसे हो गयी?' इसके बाद वह हंगरी चलकर सुखसे जीवन बितानेके लिये उससे अनुरोध करने लगा। एलिज़ावेथ बोली—'मैंने अपने सच्चे स्वामी ईश्वरके लिये यह वेश धारण किया है। आप मुझे यहाँसे ले चलनेका व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। मेरे स्वामी अब मुझसे थोड़ी ही दूर रह गये हैं; अब उन्हें छोड़ मैं और कहीं नहीं जाऊँगी।' दूतको निराश हो लौट जाना पड़ा।

सन् १२३१ ई० के नवम्बर-मासकी शीतकालकी उन्नीसवीं रात्रिका समय है। निर्मल नभ-सरोवरमें अगणित नक्षत्र-पद्म

विकसित होकर अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। संसारके सब जीव दिनभरके श्रमको मिटाकर नवीन शक्तिकी प्राप्तिके लिये शान्तिसे प्रकृतिकी गोदमें लेट रहे हैं। इसी समय बिछौनेपर पड़ी हुई ज्वरपीड़िता एलिज़ाबेथको एक उज्ज्वल प्रकाश दिखायी दिया। फिर बड़े ही मधुर स्वरोंमें उसने सुना—'प्रिये एलिज़ाबेथ! नित्य-धाममें तेरे स्वागतके लिये सारी तैयारियाँ हो चुकी हैं। चल, शीघ्र चल, तुझको वहाँ ले चलें।'

एलिज़ाबेथ समझ गयी कि अब मेरी यह शरीरयात्रा समाप्त हो चुकी है। अपने चिरवाञ्छित परमधाममें चलनेका समय आ गया है। अतएव वह तपस्विनी नारी आनन्दसे परलोक-यात्राकी तैयारी करने लगी। इस परमानन्दमें वह शरीरकी व्याधि-को बिल्कुल भूल गयी और अपने आश्रित सभी दीन-दुखी, बन्धु-बान्धवोंसे विदा माँगने लगी। अपना अन्तिम समय एकाग्रचित्त-से ईश्वरके ध्यानमें बिताने लगी। ध्यानमें बाधा न हो, इसलिये वहाँ-पर जो भीड़ थी वह सब वहाँसे हट गयी। केवल एक धर्म-गुरु वहाँ रह गये थे। उन्होंने उससे पूछा—'क्या तुम्हें अपनी मिलकियतका कोई प्रबन्ध करना है?' एलिज़ाबेथने कहा—'अपनी सम्पूर्ण पार्थिव सम्पत्ति मैंने पहलेसे ही ईश्वरके अर्पण कर रक्खी है। उसपर दरिद्रनारायणका पूरा अधिकार है। उनके सिवा मेरा और कोई उत्तराधिकारी नहीं है।'

अब एलिज़ावेथको अपने घरमें अपूर्व शान्तिका अनुभव होने लगा। उसे प्रतीत हुआ, मानो देवदूत उसका स्वागत-गीत गा रहे हैं। वह उच्च स्वरसे प्रार्थना करने लगी, परन्तु थोड़ी देर बाद बिल्कुल शान्त हो गयी। इस समय उपस्थित सभी स्त्री-पुरुष दुःखसे रोने लगे। एलिज़ावेथ उन्हें समझाकर कहने लगी कि 'आपलोग शान्ति रखिये, मेरे दिव्य संगीत सुननेमें बाधा न डालिये।' इतना कहनेके बाद ही वह सदाके लिये इस मर्त्यधाम-से विदा हो गयी! उस समय उसकी उम्र केवल चौबीस वर्षकी थी!

एलिज़ावेथका शव श्मशान-भूमिमें ले जाते समय धर्म-याजक कीर्तन करने लगे थे, परन्तु सच्ची जननीके वियोगमें करुण-विलाप करनेवाले दीन-दुखियोंके आर्तनादके सामने उन पादरियोंका संगीत नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज़के समान हो गया। एलिज़ावेथ-के प्रति लोगोंकी इतनी अधिक श्रद्धा थी कि लोग सुदीर्घकाल-तक उसकी कुटियामें जाकर उसके अमर जीवन-कुसुमकी सौरभका अनुभव किया करते।

एलिज़ावेथकी मृत्युके चार वर्ष पश्चात् रोमके पोपने एलिज़ावेथ-को साध्वी (Saint) माननेकी घोषणा की थी। सन् १२३६ में एलिज़ावेथकी समाधिपर एक विशेष अनुष्ठानकी आयोजना की गयी और सम्राट् द्वितीय फ्रेडरिकने अपने हाथसे उस समाधिपर एक

बहुमूल्य स्वर्णमुकुट चढ़ाया। उस समय वहाँ एलिजाबेथकी सब सन्तानें भी उपस्थित थीं और उसी समय उसकी कनिष्ठ कन्याने भी हृदयमें अपनी माताकी पवित्र स्मृति धारणकर वहीं संन्यास ग्रहण किया था।

परमात्माके राज्यमें—इस विश्वमें कोई भी धर्म बुरा नहीं, सभीमें अच्छी-अच्छी बातें न्यूनाधिकरूपमें हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल प्रायः सभी धर्मोंमें पाखण्ड घुस गया है। लेकिन किसीके व्यक्तिगत दोषोंके लिये उसके धर्मकी निन्दा करना अनुचित है। हमलोगोंको दम्भ छोड़कर अपने धर्ममें दृढ़ रहते हुए एक ही परम पिताकी सन्तानके नाते सबसे प्रेम बढ़ानेके साथ ही नीर-क्षीर-विवेकी हंसकी तरह सभी धर्मोंकी उत्तम बातोंका आदर करना चाहिये।

साध्वी कैथेरिन

साध्वी कैथेरिन

सारकी जड़ और चेतन सभी शक्तियोंमें एक ऐसा प्राकृतिक भाव है कि वे परस्पर आकर्षित होकर एक दूसरेकी सेवामें अपना उपयोग करना चाहती हैं, इसी भावको सेवा कहते हैं। इस सेवाभावका जिसमें जितना ज्यादा विकास होता है वह उतना ही उत्तम पुरुष है। साधारणतः संसारमें जो वस्तुएँ अनुपयोगी समझी जाकर जितनी लापरवाहीसे देखी जाती हैं उनमें भी प्रायः उतनी ही ज्यादा उपयोगिता होती है। उनके द्वारा अज्ञातरूपसे संसारकी ठोस सेवा हुआ करती है। जगत्‌में कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं जो प्रत्यक्षमें उदासीन-सी दिखायी देनेके कारण संसारके लिये निरर्थक समझी जाती हैं, लेकिन गम्भीरतापूर्वक विचारा जाय तो संसारको जितनी शक्ति और जितना लाभ इनसे मिलता है उतना शायद प्रत्यक्ष दीखने-

वाली शक्तियोंसे नहीं मिलता। भारतवर्ष तो ऐसी शक्तियोंकी खान माना जाता था। मेरा विश्वास है कि आज भी इस भूमिमें ऐसी शक्तियाँ, ऐसी विभूतियाँ हैं जो जगत्‌के दूसरे हिस्सोंके लिये अभूतपूर्व हैं और जो अपने प्रभावसे संसारको आश्चर्यमें डाल सकती हैं। आज मैं पाश्चात्य देशकी एक ऐसी शक्तिका चरित्र पाठकोंकी सेवामें रखना चाहता हूँ जिसने प्रेम-भक्ति-रञ्जित हृदय, आदर्श सेवाभाव, विलक्षण धैर्य, भोगोंमें विरक्ति और दृढ़ निश्चय-के साथ संसारके रंगमञ्चपर अपना अनोखा पार्ट खेलकर खृष्टीय धार्मिक आकाशको अपनी तेजोमय शान्तिपूर्ण किरणोंसे देदीप्यमान कर दिया था, इस शक्तिका नाम था—साध्वी कैथेरिन।

कैथेरिन सन् १३४७ ई० में इटलीके अन्तर्गत सायेना नगरमें जेकोपो नामक एक सरल-चित्त, विनयी, दयालु और धार्मिक सद्‌गृहस्थके घर स्नेहमयी साध्वी नारी लापाके उदरसे पैदा हुई थी। अपने सन्तानपर माता-पिताका तो सहज स्नेह होता ही है, लेकिन कैथेरिनके खिले हुए कोमल गुलाब-से मुखड़े-को और उसकी सरल हँसीको देखकर अड़ोस-पड़ोसके नर-नारियोंको भी मुग्ध होना पड़ता था। इसीसे लोगोंने उसका एक नाम 'आनन्दमयी' रख लिया था। कैथेरिनके माँ-बाप बड़े ही धार्मिक थे। बालकके जीवनपर जैसा माता-पिताके आचरणोंका प्रभाव पड़ता है वैसा दूसरे किसीकी शिक्षाका नहीं पड़ता। इसीके अनुसार जेकोपो और लापाका प्रभाव कैथेरिनके जीवनपर

खूब पड़ा । वह बालिका भी उन्हींके-से आचरण करनेका प्रयत्न करने लगी । फलस्वरूप उसे एक दिन छः ही वर्षकी अवस्थामें स्वप्नमें प्रभुकी ज्योतिर्मयी मूर्ति अपने सामने खड़ी दिखायी दी । इस घटनाका उसके कोमल चित्तपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा और उसी समयसे उसकी धर्मवृत्ति दिनों-दिन बढ़ने लगी । इस अवस्थामें साधारणतः बालकोंका मन खेल-कूद और किस्से-कहानीमें ही लगा रहता है । परन्तु *'होनहार बिरवानके होत चीकने पात'* इस लोकोक्तिके अनुसार कैथेरिनका मन आरम्भसे ही सन्त-महात्माओंके जीवनचरित सुननेमें लगता था । वह सन्तोंकी जीवन-लीलाओंको केवल सुनकर ही सन्तुष्ट नहीं होती वरं उसी आदर्शके अनुसार अपने जीवनको भी पवित्र बनानेकी कोशिश किया करती ।

मधुर फल ज्यों-ज्यों पकता है त्यों-ही-त्यों उसमें छिपी हुई मधुरता प्रकट होने लगती है, इसी प्रकार कैथेरिनकी वयोवृद्धिके साथ-साथ उसके हृदयमें भी मधुर धर्मभावका विकास होने लगा । वह एकान्तमें ईश्वरसे प्रार्थना किया करती और अपने मनके भावोंपर सदा सावधानीसे निगरानी रक्खा करती । उस समय यूरोपमें स्त्रियाँ एक प्रकारका संन्यास लिया करती थीं, उनके जीवनका उद्देश्य तपस्या और लोकसेवा ही हुआ करता था । कैथेरिनके मनमें वैराग्य तो था ही अतः उसका मन भी संन्यासकी ओर आकर्षित हुआ । एक दिन प्रातःकालीन सूर्यकी लाल-लाल किरणोंके सहारे वह पक्षियोंका सुमधुर गान सुनती हुई किसी निर्जन स्थानकी

ओर जाने लगी। रास्तेमें एक सुन्दर बागको देखकर उसे प्रभुकी लीलाका स्मरण हो आया और उसीका गुणगान करती हुई वहीं ध्यान-मग्न हो गयी। अकस्मात् संसारके अनेकानेक प्रलोभन प्रकट होकर उसे अपने ध्येयसे डिगानेकी चेष्टा करने लगे। यह देख कैथेरिन घबरा गयी और उनके चङ्गुलसे छूटनेका दूसरा उपाय न देख कातर-स्वरसे ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी। शरणागत भक्त-बालिकाकी कातर पुकार सुनकर भगवान्‌ने उसी क्षण सारे प्रलोभनोंको नष्ट कर उसके हृदयमें दिव्य ज्योतिका उदय कर दिया। अब विषयोंकी बाधासे बचनेके लिये कैथेरिनने आजन्म ब्रह्मचारिणी रहनेका निश्चय कर लिया और वह प्रेमसे परमात्मासे विनय करने लगी—'हे प्रभु, ऐसा उपाय करो, जिससे मैं बस, तुमको ही पतिरूपसे वर सकूँ।' अचल सुहागिनी मीराने भी एक दिन यही गाया था—

> ऐसे वरको के वरूँ जो जनमे और मर जाय।
> वर वरिये एक सांवरोजी चुड़लो अमर होय जाय॥

कैथेरिनके माता-पिता अपनी स्नेहकी पुतली कन्याके लिये नाना प्रकारके विचार बाँधा करते थे। वे उसे भाँति-भाँतिके गहने-कपड़ोंसे सजाकर उसका प्रफुल्ल मुखकमल देखा चाहते थे, लेकिन कैथेरिनको यह सब बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। धीरे-धीरे कैथेरिनकी उम्र विवाहके योग्य हो गयी। जननी लापाने एक दिन उसके सामने विवाहकी चर्चा चलायी। स्नेहमयी माता-

के सङ्कोचसे कैथेरिन स्पष्टरूपसे कुछ भी नहीं कह सकी, उसने केवल इतना ही कहा—'मैं मनुष्यका प्रिय कार्य पूर्ण करनेकी अपेक्षा ईश्वरका प्रिय कार्य करना ज्यादा कल्याणकारी समझती हूँ।' कैथेरिनके इन अस्पष्ट शब्दोंसे माता लापा उसके मनके भावको बहुत कुछ समझ गयी, इससे उसका चेहरा उदास हो गया।

कैथेरिनकी माँ और उसकी एक बड़ी बहिनने, जिसका विवाह हो चुका था, कैथेरिनको निश्चयसे डिगानेका बहुतेरा प्रयत्न किया लेकिन सब व्यर्थ हुआ। उसके कुछ रिश्तेदारोंने एक बार उसकी इच्छाके विरुद्ध एक वरको अपने घर बुला लिया, जिसे देखते ही कैथेरिन चमक उठी और बोली—'क्या मेरी इच्छाके विरुद्ध यह जाल फैलाया गया है? क्या यह युवक मेरा मन हरण करने आया है?' इस प्रकार कहती हुई वह फ़ौरन उस घरसे बाहर निकल गयी और दूसरे घरमें जाकर उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया। बेचारे युवकको निराश होकर वापस लौट जाना पड़ा।

इस घटनासे घरके लोग कैथेरिनपर बहुत बिगड़े। आख़िर उसकी बड़ी बहिनने उसे फुसलानेके उद्देश्यसे विष-मिश्रित मधुर वचनोंमें कहा—'बहिन, तेरी विवाहकी इच्छा नहीं है तो न सही, लेकिन घरमें आये हुए अतिथिके साथ सभ्यताका व्यवहार तो करना ही चाहिये। तू उससे दो मीठे शब्द बोल लेती तो तेरा क्या बिगड़ जाता? तेरे इस रूखे व्यवहारसे हमलोग कहीं मुँह दिखाने लायक भी नहीं रह गये।' यह सुनकर सरलहृदया

बालिका कैथेरिन घरवालोंके दुःखसे दुखी होकर रो पड़ी और अपना अपराध स्वीकार करती हुई क्षमा-प्रार्थना करती हुई बोली— 'आपलोग इसके लिये मुझे जो दण्ड देना चाहें; दें, मैं सहर्ष स्वीकार करूँगी ।'

कुछ ही दिनों बाद इस बहिनका देहान्त हो गया । प्यारी बहिनकी असामयिक मृत्युसे कैथेरिनके हृदयपर बड़ा आघात लगा; परन्तु इस आघातने वैराग्यकी अग्निमें घीकी आहुतिका काम किया । कैथेरिनने अनित्य जीवनका दृश्य सामने देखा । उसने मांसाहार, सुन्दर गहने-कपड़े, आमोद-प्रमोद और नृत्य-गीतादि तो पहलेहीसे छोड़ दिये थे, अब वैराग्यकी तीव्रतासे वह अपना समय और भी तपस्या, भजन तथा ध्यानमें बिताने लगी । इन्हीं दिनों एक नामधारी धर्मोपदेशक, जो कैथेरिनको अपने निश्चयसे डिगानेके लिये फुसलानेमें विफलमनोरथ हो चुके थे, कैथेरिनकी संन्यास लेनेकी इच्छाको जाँचनेके लिये उससे बोले— 'क्या तुम अपने इन सुन्दर बालोंको काट सकती हो ?' कैथेरिनके सिरके बाल बड़े ही सुन्दर थे । धर्मोपदेशकका विश्वास था कि वह इन केशोंका मोह कभी नहीं छोड़ सकेगी । परन्तु जिसका चित्त संसारके सभी विषयोंसे उदासीन हो उठा था, उसकी दृष्टिमें उन केशोंका क्या मूल्य था ? यह तो धर्मोपदेशक बने हुए उस मनुष्यका अपना मोह था जो उसके कोमल चिकने काले-काले केशोंको चित्ताकर्षक और प्रिय वस्तु मानता था ।

कैथेरिनने तुरन्त ही कैंची ली और एक ही सरटिमें सारे बालोंको काट डाला। धर्मोपदेशकका मुँह फीका पड़ गया। इस घटनासे घरवालोंको निश्चय-सा हो गया कि अब यह संन्यास लिये बिना नहीं मानेगी। इसलिये वे उसपर विशेष निगरानी रखने लगे और घरके कार्योंमें मन फँसानेके उद्देश्यसे उन्होंने नौकर-चाकरोंको जवाब देकर रसोई बनाना, झाड़ू देना, चीज-वस्तु सँभालना आदि सारे कामोंका भार कैथेरिनपर डाल दिया। उनका उद्देश्य था कि इससे यह निर्जनमें जाकर उपासना आदि नहीं कर सकेगी। परन्तु कैथेरिनने इस सारे बोझको हर्षके साथ सिरपर उठा लिया, वह इस कार्य-भारसे घबरायी नहीं, भगवत्-भजनरूपी असली कार्यमें लक्ष्य रखती हुई ही वह इन कार्योंको करने लगी।

भगवान्‌की यथार्थ भक्ति करनेवालोंको समयानुकूल नियत कर्तव्य-कर्म कभी बाधक नहीं होते और न ऐसे भक्त इन कामोंसे जी ही चुराते हैं। जो शरीरक्लेशके भयसे कर्मोंको दुःखरूप मानकर उनसे पिण्ड छुड़ानेके लिये संन्यास लेकर संसारसे अलग होते हैं, उन्हें ज्ञान-प्राप्तिरूप परमसिद्धि नहीं प्राप्त होती। भगवान्‌ने कहा है—

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्॥

(गीता १८।८)

काम, क्रोध, लोभ और मोहयुक्त कर्म, जो ईश्वरसे विमुख कर मनुष्यको संसारके चक्करमें डाल देते हैं उनको छोड़कर शेष सभी

कर्तव्य-कर्मोंको सर्वत्र ईश्वरको देखनेवाले भक्तजन भगवान्‌की सेवा समझकर ही किया करते हैं। कैथेरिन भी इसी भावसे कार्यके समय कर्तव्य-कर्मोंको बड़ी सावधानीसे करती और रातको जब सब लोग प्रकृतिदेवीकी गोदमें आनन्दसे आराम करते, तब वह ईश्वरचिन्तनमें निमग्न हो जाती, उस समय भगवत्प्रेमकी विह्वलतासे उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगती, उसका मस्तक दिव्य ज्योतिसे जगमगा उठता।

एक दिन रातको उसके पिताने कैथेरिनको इस प्रकारकी स्थितिमें देख लिया, जिससे उसके आश्चर्यका पार न रहा। कैथेरिन दिनभर घरके सब काम करती है और रातको जगकर इस तरह भगवान्‌की सेवा करती है, यह सोचकर उसका हृदय द्रवित हो गया। अब उसके द्वारा दिनमें काम करवाना पिताको बहुत अनुचित जान पड़ा, अतएव उसी दिनसे उसने कैथेरिनको घरके कामोंकी जिम्मेवारीसे मुक्त कर दिया।

इस समय उसकी पन्द्रह वर्षकी अवस्था थी। अब वह अलग एकान्त स्थानमें रहकर साधना करने लगी। वह हठयोगी-की तरह शरीरको नाना प्रकारसे संयममें रखती। उसकी यह धारणा थी कि ईश्वरकी प्राप्तिमें इस पापी देहकी ममता और इसके भोग ही बाधक हैं इसलिये वह कभी-कभी शरीरको संयमित करनेके लिये लोहेकी जंजीरोंसे जकड़ रखती। इससे उसका स्वास्थ्य गिरने लगा। वह दीनदुखियोंकी सेवा और सहायताके

लिये सदा सब प्रकारसे तत्पर रहती, उन्हें धीरज और आश्वासन देती। स्वयं साधारण रोटी और शाक-सब्जी खाकर ही अपना निर्वाह कर लेती, मोटे वस्त्र पहनती और सदा जमीनपर सोया करती। शरीर-निर्वाहमात्रके लिये बहुत ही थोड़ा आहार किया करती। इन सब साधनोंसे उसे नींद बहुत ही कम आती, जिससे रात्रिमें वह अपना अधिकांश समय भजन-ध्यानमें ही बिताया करती।

कैथेरिनकी पहलेसे ही सेण्ट डोमिनिक-सम्प्रदायके नियमानुसार संन्यास ग्रहण करनेकी इच्छा थी। अब इस बातको छिपाये रखना उचित न समझ उसने एक दिन अपने बन्धु-बान्धवों और माता-पिताके सामने दृढ़ताके साथ उत्साह-भरे शब्दोंमें अपनी अवस्था और गहरी जिम्मेवारी, एवं ईश्वरकी कृपाका अनुभव दर्शाते हुए अपने संन्यास लेनेका विचार उपस्थित किया। हृदयदुलारी कुमारी कन्या कैथेरिनके इस दृढ़ विचारको सुनकर स्नेहमयी माता लापाका चेहरा बरबस आँसुओंसे भींग गया। सब बन्धु-बान्धव चकित हो गये। पिताको भी पुत्रीकी इस बातसे कुछ विषाद हुआ। परन्तु आदर्श पिताने कन्याकी इच्छाकी कद्र करते हुए करुण-स्वरमें कहा—'बेटी कैथेरिन! भगवान् कृपा करके तुझे अपनी ओर खींच रहे हैं, तो अब हमलोग तेरे इस पवित्र मार्गके काँटे बनकर ईश्वरके अपराधी न बनेंगे। तू निर्भय चित्तसे परमेश्वरकी आज्ञाका पालन करती हुई अपने लक्ष्यकी ओर आगे बढ़, ईश्वर तेरा कल्याण करें।'

अब कैथेरिन अठारह वर्षकी हो गयी, उसके संन्यास-ग्रहणका समय आ गया। इसके लिये एक बड़ा उत्सव किया गया। माता-पिता, बन्धु-बान्धवादि सभी निमन्त्रित किये गये। कैथरिन संन्यासिनीकी पोशाक पहने उपासना-मन्दिरमें आयी, उसे देखकर उपस्थित जनसमुदायमें करुणाका स्रोत उमड़ पड़ा। वे लोग इस पोशाकमें कैथेरिनकी साध्वी मूर्तिको श्रद्धा और भक्तिपूर्वक देवकन्याकी तरह अनुभव करने लगे। जिस प्रकार सूर्यकी किरणें घने बादलोंको भी भेदकर पृथ्वीपर उतर आती हैं, उसी प्रकार कैथेरिनका अपूर्व तेज संन्यासके कृष्णवर्ण कपड़ोंके अन्दरसे बाहर निकला पड़ता था। प्रार्थनाका समय हुआ। सब प्रभुकी प्रार्थनामें मग्न हो गये। इसके बाद कैथरिनने वहाँके नियमानुसार संन्यास-ग्रहण किया और तबसे वह दीनता, पवित्रता और प्रभु-सेवा—इन तीन व्रतोंको धारण करके अपना जीवन बिताने लगी। तीन वर्ष तो उसने लगातार मौन-व्रतका पालन किया। इस बीचमें वह अपने आचार्यके सिवा अन्य किसीसे भी नहीं बोलती थी। दिन-रात भजन-ध्यानमें लगी रहती। इससे उसका हृदय पवित्र होकर आनन्दसे भर उठता, उसके चेहरेपर दिव्य प्रकाश झलकता और हृदयमें प्रभु-प्रेमकी लहरें उछलती हुई स्पष्ट दिखायी पड़ती थीं।

छोटी उम्रके संन्यासियोंपर अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ आती हैं, विषयोंके प्रलोभन और विषय-संगसे पतित हो जानेका डर तो रहता ही है। न मालूम किस समय किस कुसंगसे विषय-

वृत्ति जाग उठे। इस विषयमें बड़े-बड़े तपस्वी भी हार मान जाते हैं; परन्तु यदि साधक ईश्वरके शरणागत होता है तो वह भगवत्-कृपासे सारी विपत्तियोंको लाँघकर अपने लक्ष्यतक पहुँच जाता है और अन्तमें अनन्त शान्तिका अनुभव करता है। जिस प्रकार सोना अग्निमें तपाये विना शुद्ध और देदीप्यमान नहीं होता इसी प्रकार भक्त भी जबतक विपत्तिरूपी अग्निमें तपाकर शुद्ध नहीं कर लिया जाता तबतक उसका साधन प्रायः अपूर्ण ही रहता है। इसी-लिये भगवान् कृपा करके भक्तोंको कष्ट और विपत्तियोंसे बनी हुई कठिन घाटियोंमें ले जाते हैं। इन घाटियोंको लाँघते समय जो भगवान्को भूलकर अपने बुद्धिबलका अहङ्कार कर बैठता है, वह फँस जाता है और जो सर्वतोभावसे उनके शरणागत हो रहता है, वह सारे विघ्नोंको लात मारकर आगे बढ़ जाता है।

सुखी मीन जिमि नीर अगाधा। तिमि हरि सरन न एकौ बाधा॥

कैथेरिनको भी अनेक विपत्तियोंका सामना करना पड़ा। बीच-बीचमें उसे संसारके अनेकानेक प्रलोभन सताने लगते। पवित्रहृदया संन्यासिनीको इन पापों और प्रलोभनोंके साथ बड़ा भारी संग्राम करना पड़ा। एक बार तमोगुणप्रधान दुर्बुद्धि नामक शैतानने उसे नीतिके आलङ्कारिक शब्दोंमें अनेक विवाहिता धार्मिक नारियोंके चरित सुनाकर और संसारके सुख-वैभवोंके सब्ज़बाग दिखलाकर विवाहित-जीवन बितानेकी सलाह दी। संगका प्रभाव बड़ा प्रबल होता है। विषयी जीवोंके आचरणका

विचार या उनकी चर्चातक भी साधकका पतन करनेवाली होती है, फिर उनका संग करना तो महाविषधर सर्पके संगके समान है। इसीसे प्रातःस्मरणीय महात्मा सूरदासजीने कहा है— '*तजो रे मन हरिविमुखनको संग।*' कैथेरिनपर भी इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। कुछ समयके लिये उसका मन रसहीन और उसका निर्मल पवित्र हृदय भक्ति-शून्य-सा प्रतीत होने लगा। इस आक्रमणसे वह एक बार तो अचेत-सी हो गयी। परन्तु इस अवस्थामें भी उसने अपने ग्रहण किये हुए व्रतोंको नहीं छोड़ा, जिसके प्रभावसे उसका मन अपने मार्गसे डिग नहीं सका। साथ ही उसने अपने परम प्रियतम भगवान्‌की प्रार्थनारूपी मजबूत ढालको भी बड़ी सावधानीसे पकड़े रक्खा। फलस्वरूप दुर्बुद्धिको निर्बल होकर नष्ट हो जाना पड़ा। कैथेरिन बच गयी। अब उसे अपने हृदयमें ईश्वरके आविर्भावका प्रत्यक्ष-सा अनुभव होने लगा और उसकी परमात्म-दर्शनकी लालसा अत्यन्त प्रबल हो उठी।

संसारके रहस्यमय परदेकी आड़में होनेवाली परमात्माकी सृष्टि-सञ्चालन-लीलाको जाननेवाले तत्त्वज्ञानी और प्रभु-प्रेमी सन्त-जनोंने कहा है कि ईश्वरीय गुणोंवाले मनुष्यका जन्म संसारमें ईश्वरके प्रेमसम्पादनके लिये ही होता है। साध्वी कैथेरिन तत्त्वज्ञों-की इस वाणीका रहस्य समझ चुकी थी। उसका चित्त प्रभुकी असीम सुन्दरताको देखनेके लिये व्याकुल हो उठा। दिन-रात वह केवल इसी विचारमें डूबी रहती थी। उसने प्रभुके साथ

अपना आध्यात्मिक विवाह कर लिया और उन्हींको वह अपना सर्वस्व समझने लगी। स्त्रियोंके लिये पतिका अनन्त-मिलन ही अमर-सौभाग्य और उसका वियोग ही दुर्भाग्य या वैधव्य है। कैथेरिन इस अमर-सौभाग्य-प्राप्तिके लिये प्रभुकी प्रेममयी मधुर मूर्तिका निरन्तर ध्यान करने लगी। प्रभुका ध्यान ही उसका आहार, और प्रार्थना ही उसकी तृषा-शान्तिके लिये सुधा-सरोवर था। लगातार अनेक दिनोंतक उसने प्रभुके भोगमेंसे ही एक-आध टुकड़ा खाकर जीवन धारण किया था। सच्ची प्रेमभरी इस कठिन साधनाके फलस्वरूप अन्तमें उसको प्रियतम प्रभुने दर्शन दिये, जिससे वह कृतकृत्य हो गयी।

एक दिन कैथेरिनको प्रभुकी मूर्ति एक हाथमें सोनेका और दूसरेमें काँटोंका मुकुट लिये यह कहते हुए दिखायी दी कि 'इन दोनोंमेंसे तुम अपनी इच्छानुसार कोई-सा एक मुकुट ले सकती हो।' कैथेरिन चाहती तो स्वर्ण-मुकुट लेकर संसारके समस्त ऐश्वर्य प्राप्त कर सकती थी, लेकिन उसने अपने प्रियतमका सदा स्मरण दिलानेवाला काँटोंका मुकुट ही ग्रहण किया। पाण्डव-जननी कुन्तीने भी भगवान्‌से दुःखका ही वरदान माँगा था। धन्य है भक्तोंके अनोखे भावको! एक भक्त कहता है—

सुखके माथे सिल पड़ो जो नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुःखकी जो पल-पल नाम रटाय॥

अब कैथेरिनकी सुख्याति चारों ओर फैलने लगी। उसपर लोगोंकी भक्ति और श्रद्धा दिनों-दिन बढ़ने लगी। झुण्ड-के-झुण्ड नर-नारी उसके दर्शन और उपदेश प्राप्त करनेके लिये आने लगे। कैथेरिनके दर्शन, संग और सदुपदेशोंका ऐसा प्रभाव था कि उन्हें पाकर पापीलोग भी पाप-पथसे हटकर धर्म-मार्गपर आ जाते थे। लोगोंका विश्वास इतना अधिक बढ़ गया कि महान् दुराचारी स्त्री-पुरुष उसके पास आते और जैसे छोटे बच्चे अपनी स्नेहमयी जननीके सामने निःसंकोच मनकी बात कह देते हैं, वैसे ही अपनी पाप-करनियोंको बयान कर पश्चात्ताप करते; कैथेरिन उनसे घृणा न कर विशेष प्रेम दिखलाती हुई उन्हें सान्त्वना देती और प्रभुसे क्षमा-याचना करनेका उपदेश करती, साथ ही स्वयं भी उनके लिये सच्चे हृदयसे प्रार्थनाएँ किया करती। एक बार नन्नेस (Nennes) नामक एक दुराचारी कैथेरिनके पास आया। बहुत चेष्टा करनेपर भी जब उसकी वृत्तियाँ नहीं सुधरीं, तब दयासे प्रेरित होकर कैथेरिन उसके लिये गद्गद-कण्ठसे भगवान्‌से कातर-प्रार्थना करने लगी। भक्तिमयी कैथेरिनकी प्रार्थना प्रभुने सुन ली; थोड़े ही समयमें उस मनुष्यमें अद्भुत परिवर्तन हुआ और वह पश्चात्तापके आँसू बहाता हुआ कैथेरिनके चरणोंमें गिर कृतज्ञता प्रकट करने लगा। उसने आग्रह करके कैथेरिनको एक सुन्दर मकान अर्पण किया। कैथेरिनने इसी घरमें आश्रमकी स्थापना कर दी। क्या ही सुन्दर सुधारका उपाय है। आपसमें एक दूसरेका प्रतिवाद

करनेसे द्वेष, वैमनस्य, द्रोह और अशान्ति बढ़नेके सिवा और कोई विशेष लाभ नहीं होता। सच्चे सुधारक इस प्रकारके प्रतिवादसे दूर रहकर जिनका सुधार करना चाहते हैं, उनसे सच्चा प्रेम रखते हुए उनके लिये ईश्वरसे सच्चे हृदयसे यही प्रार्थना करते हैं कि—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

सांसारिक विषय-भोगोंमें संन्यासिनी कैथेरिनकी ज़रा भी आसक्ति नहीं थी। परन्तु वह सांसारिक लोगोंसे घृणा भी नहीं करती थी। वह सबके साथ सगे भाई-बन्धु आत्मीय स्वजन एवं माता-पिताकी तरह स्नेह करती। अपने माता-पिता आदि कुटुम्बियों-सहित सबकी सेवा करना उसने अपने धर्मका एक अंग बना रक्खा था। इसलिये कई बार वह अपने माँ-बापकी सेवा करनेके लिये भी घरपर जाकर रहा करती थी। एक दिन उसके हृदयमें ईश्वरकी यह आदेशवाणी स्फुरित हुई कि 'तुम अबसे अपना सर्वस्व लगाकर दीन-दुखियोंकी सेवा करो।' तदनुसार उसी समयसे उसने दीनसेवाको अपने जीवनका एक मुख्य अङ्ग बना लिया। सन् १३७० ई० में पिताके स्वर्गवासके बाद कैथेरिन अपनी माता एवं भाई-बन्धुओंकी सेवा करनेके लिये फिर घर आयी। वहाँ कभी तो वह दीन-दुखियोंकी सेवामें, और कभी माता आदिकी शुश्रूषामें लगी रहती। इस प्रकार दिन-रातका उसका

अधिकतर समय इसी काममें वीतने लगा। सन् १३७४ ई० में देशमें भयङ्कर महामारी फैली, हजारों मनुष्य मरने लगे। लोगोंके असीम कष्टको देखकर कैथेरिन, जैसे माता अपने बालकोंके संक्रामक रोगका विचार किये विना ही उनकी सेवा करती है, वैसे ही, सबकी सेवामें लग गयी। इसी समयसे कैथेरिनकी ख्याति दूर देशोंमें भी फैलने लगी और देश-देशान्तरोंसे लोग श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उसके दर्शनको आने लगे।

सन् १३७५ ई० में फ्लारेंस-नगरके निवासियोंने पोपके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उस समय पोपको इस विवादके मिटानेमें कैथेरिनपर वड़ा भरोसा था। इसी गरजसे वह वोले कि 'मैं शान्तिके सिवा और कुछ भी नहीं चाहता। इस विवादके मिटानेका भार मैं तुमपर देता हूँ। लेकिन इतना ध्यान रखना कि गिरजेके सम्मानमें वट्टा न लगने पावे।' इसके जवावमें कैथेरिनने पोपको वड़े ही प्रभावशाली शब्दोंमें उसके और उसके अधीनस्थ धर्मोपदेशकोंके कार्योंकी तीव्र आलोचना करते हुए और पुराने धर्माचार्योंकी महत्ता दिखाते हुए एक वड़ा ही शिक्षाप्रद पत्र लिखा। पत्रमें उसने समझाया कि 'ईश्वरके कार्यके लिये नियुक्त रहनेवाले लोग यदि अपने शारीरिक और इन्द्रिय-जनित सुखकी ओर देखने लगें तो उनके द्वारा संसारका भला होना वड़ा ही कठिन है।' इस झगड़ेको निपटानेके लिये देशके वड़े-वड़े न्यायाधीशोंने भी कैथेरिनको लिखा था। कैथेरिनकी

कार्य-कुशलतासे झगड़ा तो मिट गया, लेकिन बेचारे पोपके भाग्य-में इस शान्तिका उपभोग नहीं बदा था, इसलिये वह पहले ही परलोक सिधार गया।

कैथेरिनकी आत्मशक्तिमें इतनी प्रबलता और इतना प्रभाव हो गया कि प्रायः असम्भव मानी जानेवाली अघट-घटनाएँ भी उसके प्रभावसे सत्य सिद्ध होने लगीं। एक समयकी बात है कि पेरुगुआ शहरके एक नवयुवक जमींदारको सायेनाकी सरकार-ने राजद्रोहके अभियोगमें प्राणदण्डकी सज़ा दी। उस युवक जमींदारने वहाँकी गवर्नमेण्टकी कड़े शब्दोंमें आलोचना की थी। ईश्वर और धर्मके रहते हुए भी केवल इस थोड़े-से अपराधके लिये इतना भयङ्कर दण्ड दिये जानेके अन्यायपर युवकको बड़ा क्रोध और दुःख हुआ और वह ईश्वरको भला-बुरा कहकर प्रलाप करने लगा। उसकी स्थिति बड़ी करुणोत्पादक हो गयी थी। अशान्तिके मारे उसको तनिक भी चैन नहीं पड़ता था। इस युवककी ऐसी दुर्दशाका हाल सुनकर कैथेरिनके हृदयमें स्नेह उमड़ आया और वह स्वयं सान्त्वना देनेके लिये उसके पास गयी। कैथेरिनके स्नेहपूर्ण वचनोंसे युवकको बड़ी शान्ति मिली और उसने कैथेरिन-के सामने अपने हृदयको खोलकर रख दिया। कैथेरिनके उपदेशसे वह मृत्युको सहर्ष आलिङ्गन करनेके लिये तैयार हो गया। मृत्यु-समयमें भी उसका ईश्वरके प्रति पूर्ण विश्वास था। उसने अन्त समयमें कैथेरिनसे अपने पास रहनेके लिये प्रार्थना की थी,

इस कारण प्राणदण्डके समय वह वहाँ उपस्थित थी। युवकने कैथेरिनके साथ मिलकर अन्तिम प्रार्थना की। कैथेरिनने चाहा कि युवककी जगह मैं ही फाँसीपर लटका दी जाऊँ, और इसके लिये उसने फाँसीके तख्तेपर अपना सिर भी रक्खा, लेकिन ऐसा न हो सका। उसने उसके लिये ईश्वरसे प्रार्थना की—'हे ईश्वर! इस युवकके हृदयमें प्रकाश और शान्ति प्रदान करो' और वह उसके प्रसन्न मुखकी ओर देखने लगी। युवक भी भीड़के सामने हँसता हुआ वध-स्थानपर जा पहुँचा। कैथेरिन उसे ईसाकी मृत्यु-कथाका स्मरण दिलाती हुई उसका मस्तक फाँसीके तख्तेपर रखकर बोली—'प्यारे भाई! अब तुम अपना मस्तक नीचे करो। और प्रभुका स्मरणकर तैयार हो जाओ।' युवकके मुँहसे 'ईश्वर' और 'कैथेरिन' दो अन्तिम शब्द निकले और वह सदाके लिये ईश्वरके साम्राज्यमें अनन्त शान्ति लाभ करने चला गया। कैथेरिनने 'तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो' कहकर आँखें बन्द कर लीं और उसके हाथोंपर उस युवकका छिन्न मस्तक आ पड़ा। अहो! भक्तोंकी क्या ही विचित्र महिमा है? उनके थोड़े-से संगसे ही मनुष्य सदाके लिये प्रभु-परायण निर्भय हो जाता है।

एक समय टेका नामक एक स्त्रीको भयानक कोढ़ हो गया। उसके घावोंकी दुर्गन्धसे कोई भी मनुष्य क्षणभरके लिये भी उसके पास शान्तिसे नहीं ठहर सकता था। इसलिये वहाँके अफसरने उसको ग्रामके बाहर किसी एक मठमें रखनेकी आज्ञा दी। टेका

असहनीय वेदनाके मारे व्याकुल थी। यह करुण-कथा कैथेरिनके कानोंमें पड़ते ही वह उसकी सेवाके लिये जानेको तैयार हो गयी, लेकिन उसके स्वजन-बान्धवोंको यह बात नहीं रुची, वे बोले कि 'हमलोग तुम्हें एक कोढ़ी स्त्रीकी सेवा करके अपना अमूल्य जीवन नष्ट नहीं करने देंगे।' उनकी यह धारणा थी कि यदि कैथेरिन इस प्रकार अपने जीवनसे हाथ न धोकर और सेवाके कार्य करेगी तो संसारका ज्यादा उपकार होगा। लेकिन कैथेरिन इस बातको कब मानने लगी। उसके सामने जो कार्य आता वह उसीमें लग जाती। फिर हाथमें आये भगवत्-सेवाके अवसरको वह कैसे जाने देती। भगवान्‌का आदेश उसे स्मरण था, कैथेरिन टेकाके पास गयी और बहिनकी तरह उसकी सेवा करने लगी।

टेकाका पीड़ाके मारे दिमाग ठिकाने नहीं था, इसलिये वह कैथेरिनको जब वह प्रार्थना करनेके लिये अलग एकान्तमें जाती, तब क्रोधमें भरकर बुरी तरह कोसने लगती। परन्तु कैथेरिनने उसके सब प्रकारके दुर्वचन सहकर भी उसकी सेवा करना नहीं छोड़ा।

लोग प्रायः ऐसे अवसरोंपर किसी प्रकारका बहाना बनाकर कह दिया करते हैं कि 'अमुक सेवा-कार्य तो कोई भी कर सकता है, हम अपना अमूल्य समय किसी दूसरे महत्त्वके काममें देंगे तो संसारका विशेष लाभ होगा।' परन्तु ऐसी धारणा ग़लत है।

मनुष्यके क्षणभङ्गुर जीवनका क्या निश्चय है ? जीवनमें सेवाके असली अवसर बार-बार नहीं आया करते । इसलिये हाथ आये हुए मौकेको कभी न छोड़ना चाहिये, चाहे वह सेवाका कार्य मामूली हो या बड़ा, आसान हो या कठिन । यदि परोपकारके कार्यमें सर्वस्व भी होमना पड़े तो भी पीछे न हटना चाहिये । जो परोपकारके लिये सर्वस्व त्याग करनेको तैयार नहीं, वह सेवाका महत्त्व नहीं समझता ।

इतना सब हो चुकनेपर भी कैथेरिनके इष्टदेवको सन्तोष न हुआ । वे उसे स्वर्णकी तरह और भी तपाकर कान्तिमय बनाना चाहते थे । इसलिये अबकी बार उसके सामने और भी भयङ्कर परीक्षा-अग्नि प्रकट की गयी । कैथेरिनके साथ एण्ड्रिया नामक एक संन्यासिनी भी उसी आश्रममें रहती थी । वह संन्यासिनी तो थी, लेकिन उसका ध्येय किसी प्रकारसे यश प्राप्त करना था । अच्छे कर्म तो उससे बनते नहीं थे, जिससे उसकी ख्याति होती । वह दूसरोंकी ख्यातिसे ईर्षा करने लगी । उसके वक्षःस्थलपर एक घाव हो जानेसे उसमें बड़ी दुर्गन्ध निकलती थी, जिससे कोई भी उसकी सेवा नहीं कर सकता था । इसलिये उसकी परिचर्यामें भी कैथेरिन ही रहने लगी । द्वेषाग्निसे जलती हुई कृतघ्ना एण्ड्रिया प्राणपणसे सेवा करनेवाली कैथेरिनकी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा न देख सकी । इसलिये अन्य उपाय न देख, उसने उसके शीलपर मिथ्या कलङ्क लगाना शुरू किया और कहने लगी कि 'कैथेरिन मेरी

सेवाके बहाने अपना पाप-कार्य चरितार्थ कर छिपाना चाहती है।' उस राक्षसीने इस प्रकार ऐसी चतुराईसे इस मिथ्या बातका प्रचार करना शुरू किया कि जिससे बहुतोंको उसपर विश्वास होने लगा। यहाँतक हुआ कि एक दिन आश्रमवासिनी कई स्त्रियोंने कैथेरिनकी बड़ी भर्त्सना की। परन्तु कैथेरिनकी इससे शान्ति भंग नहीं हुई और वह दृढ़ताके साथ उनको समझा-बुझाकर कहने लगी—'आपलोग विश्वास रक्खें, मैं जन्मसे कुमारी हूँ। प्रभुकृपासे मेरे ब्रह्मचर्यव्रतमें दुनियाकी कोई भी शक्ति बाधक नहीं हो सकती।' कैथेरिन एकान्तमें कलङ्क-भञ्जन ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी।

परमात्माने स्त्रियोंको स्वाभाविक ही सहनशक्ति दी है। कष्ट-सहिष्णुता और क्षमाकी तो मानो वे मूर्ति ही हैं, परन्तु वे अपने शीलव्रतपर किसी भी प्रकारका मिथ्या आक्षेप या कलङ्क नहीं सह सकतीं। कैथेरिनकी माता लापाने भी जब यह सुना कि उसकी पवित्रताकी मूर्ति प्यारी बेटी कैथेरिनपर इस प्रकार झूठे कलङ्क लगाये जा रहे हैं तो वह पगलीकी भाँति दौड़ी उसके पास आयी और बोली—'मैं तेरा अपमान किसी प्रकार नहीं सह सकती और न तुझे कृतघ्ना एण्ड्रियाके पास उसकी सेवा करनेके लिये जाने दूँगी। यदि तू अब उसके पास गयी तो मैं समझूँगी कि हम तेरे कोई नहीं हैं।' बेचारी कैथेरिन बड़े धर्म-सङ्कटमें पड़ गयी। वह धीरज धरकर मातासे बोली—'माता! मनुष्य

तो न मालूम कितनी वार ईश्वरको अस्वीकार कर उसके कितने अपराध करता है। क्या इससे ईश्वर उनपर दया करना छोड़ देता है? क्या हमारे प्रभुने सूलीपर चढ़ते समय अपने शत्रुओंकी मङ्गल-कामना नहीं की थी? तव फिर हम भी एण्ड्रियाको क्षमा क्यों नहीं कर देतीं? ईश्वरने उसकी सेवाका भार हमारे ऊपर दिया है। यदि हम अपने कर्तव्यसे च्युत होती हैं तो क्या हम ईश्वरकी अपराधिनी न होंगी?' कैथेरिनके करुणामय शब्दोंसे माताकी आँखोंसे अश्रुधारा वह चली और अपनी कोखसे ऐसा रत्न पैदा करनेके लिये वह ईश्वरको धन्यवाद देने लगी। कन्याके हृदयको मानापमानसे इतना ऊँचा उठा देख वह और कुछ न कह सकी।

कितनी कठिन परीक्षा है? मनुष्य अपनी इज्ज़त वनाये रखनेके लिये धन, जन तथा कभी-कभी तो प्राणोंतकका विसर्जन कर देता है। लेकिन—

> कंचन तजना सहज है सहज त्रियाका नेह।
> मान बड़ाई ईर्षा, दुर्लभ तजना येह॥

धन्य कैथेरिन! तुमने कितनी सरलता और दृढ़ताके साथ इस मान-बड़ाईकी कठिनतम दुर्गम घाटीको पार कर लिया! हमलोग आज स्वयंसेवककी चपरास (वैज) मात्र लगाकर अपनेको धन्य समझते हैं और अभिमानमें अकड़े जाते हैं। लेकिन सच्चा सेवक वही है जो अपनेको *'तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना'* बना सकता है।

कैथेरिनने अपना सेवा-कार्य पूर्ववत् जारी रक्खा। सत्य कबतक छिपा रह सकता है? क्या मेघ सूर्यको छिपाकर उसका अस्तित्व मिटा सकते हैं? अन्तमें प्रेमसे पाषाणहृदय पिघल ही गया। एण्ड्रियाका हृदय आजन्म ब्रह्मचारिणी पवित्र संन्यासिनीपर झूठा कलङ्क लगानेके अपराधसे जलने लगा। अब वह पश्चात्तापकी प्रज्वलित अग्निका ताप न सह सकी और रोती हुई कैथेरिनके चरणोंमें गिर अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा-प्रार्थना करने लगी।

इस घटनाके बाद कैथेरिनपर लोगोंकी भक्ति और श्रद्धा और भी बढ़ गयी। पुण्यके प्रकाशसे उसका जीवन उज्ज्वल हो गया। वह अन्तरमें दिव्य शान्ति और परमानन्दका अनुभव करने लगी। उसके नेत्र सर्वदा अपने प्रभुके दर्शनकर तृप्ति-लाभ करने लगे और उसे प्रेम-समाधि होने लगी। भगवत्-दर्शन और नाम-श्रवण-मात्रसे उसका बाह्यज्ञान जाता रहता और शरीर मृतकतुल्य स्थिर हो जाता। उसकी आत्मा परमात्मामें तल्लीन हो जाती। अब वह शरीरको और विशेष दिन धारण न कर सकी और परलोक-यात्राकी तैयारी करने लगी। अन्तमें सन् १३८० ईस्वीकी ता० २९ वीं अप्रैलके दिन कैथेरिन अपने समीप उपस्थित प्रत्येकसे विदा माँगकर जानेको प्रस्तुत हो गयी और मुँहसे 'हे प्रभो! यह आत्मा अब तुम्हारे ही हाथोंमें अर्पण करती हूँ' कहकर ३३ वर्षकी अवस्थामें ही नश्वर शरीरको छोड़ परलोक चली गयी।

कैथेरिनके उपदेशवाक्य, जिनमेंसे कुछ नीचे उद्धृत हैं, बड़े ही सुन्दर और शिक्षाप्रद हैं। दुःख है कि ऐसे ऊँचे सिद्धान्तों-वाले ईसाई-धर्मके अनुयायी लोग आज ईसाई बननेका दावा करते हुए भी निःशस्त्र निरीह लोगोंपर जुल्म करनेसे बाज़ नहीं आते।

'जो जीव आत्मविस्मृत होकर एवं समस्त संसारको भुलाकर केवल स्रष्टाकी ओर दृष्टि रखता है वही सिद्ध है।'

'जो जीव अपने तन-मनकी अयोग्यता और निर्बलताको समझ सकता है और उसके लिये 'जो कुछ भी सुखदायक या मङ्गलकारी है वह सब उसे ईश्वरसे ही प्राप्त होता है' ऐसा अनुभव करता है वही आत्माको सर्वभावसे ईश्वरको आत्मसमर्पण कर सकता है और वही परमात्मामें तल्लीन हो सकता है।'

'जो जीव ईश्वरके साथ योगयुक्त होकर जितना उससे मिल सकता है उतना ही वह अपने पापों और मलिन भावोंकी तरफ घृणा प्रकट कर सकता है। जिसके हृदयमें अपने पापों और मलिन भावोंके प्रति घृणा उत्पन्न नहीं होती, उसके हृदयमें ईश्वरका प्रेम सञ्चरित नहीं होता, यह निश्चित बात है।'

'तुम विनयी बनो। परीक्षा और दुःखके समय सहिष्णुता रक्खो। सौभाग्यके समय गर्वमें फूल न जाओ। अपने-आपको सर्वदा संयम और शासनमें रक्खो। इस प्रकार आचरण करनेसे तुम ईश्वर और मनुष्योंके प्रियपात्र बन सकोगे।'
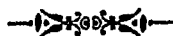
साध्वी गेयाँ

साध्वी गेयों

पस्विनी महिला गेयों एक नारी-रत्न भक्त थी। फ्रांस ही क्या सारे यूरोपके साधु-सन्तोंमें लोग उन्हें बड़ी श्रद्धासे देखते हैं। ये परमात्माकी कैसी भक्त थीं यह उनके इन शब्दोंसे स्पष्ट प्रकट होता है कि 'इस संसारमें अनन्य प्रेमी अपने प्रेमपात्रसे जितना स्नेह करता है मैं उसकी अपेक्षा ईश्वरसे कहीं अधिक प्रेम करती हूँ।' तपस्विनी गेयोंके ये शब्द पढ़कर गोसाईं तुलसीदासजीका यह दोहा याद आ जाता है कि—

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

इस दोहेका भाव उक्त शब्दोंसे मिलता-जुलता-सा है। इस तपस्विनीका जन्म फ्रांसके मोटरझी नगरमें १३ अप्रैल सन् १६४८ में हुआ था। इसका असली नाम जॉन मैरी था। उसके पिता देशमें एक बड़े ही प्रतिष्ठित और धनी पुरुष थे। उस समय फ्रांसमें धनियोंको अनेकों तरहके सुख मौजूद थे। जॉन मैरी भी

बड़े सुख और आरामसे पाली-पोसी गयी थी। बचपनसे ही उसके कोमल हृदयपर धर्मका सच्चा भाव विशेषरूपसे अङ्कित हो गया। उसने अपने आत्मचरितमें लिखा है कि 'यद्यपि मैं बड़ी छोटी बालिका थी पर उस समय भी ईश्वरकी कथाएँ सुननेमें मुझे बड़ा प्रेम था। उस समय संन्यासिनी बनना मुझे बड़ा अच्छा लगता था।'

पाँच वर्षकी अवस्थामें वह पाठशालामें बैठायी गयी। उसकी स्मरणशक्ति अत्यन्त तीव्र थी और उसमें प्रतिभा भी खूब थी, इससे थोड़े ही समयमें उसने बहुत कुछ पढ़ लिया। ११ वर्षकी अवस्थामें उसने बाइबिल पढ़ ली जो उस समय बहुत कम लोग जानते थे। इस धर्मपुस्तकके उसने कितने ही आवश्यक अंश जबानी याद कर लिये, जिन्हें वह प्रेमपूर्वक रटा करती थी। इससे पता लगेगा कि उसमें ईश्वरभक्ति और धर्मभाव आरम्भहीसे जागृत हो गये थे।

वह एक अच्छे कुटुम्बकी कन्या थी। वह बड़ी रूपवती थी और उसकी माता सदा उसे बड़े प्रेमसे रखती, सुन्दर वस्त्र पहनाती और हर तरह उसका सिंगार करती थी। क्रमशः वह बालिकासे युवती होने लगी। बाल्यावस्थासे ही वह थोड़ा-बहुत ईश्वरसे प्रेम करने लगी थी। जब उसकी अवस्था चौदह वर्षकी थी उस समय एक गुणवान् सुन्दर नवयुवक उसके रूप-लावण्यको देखकर मोहित हो गया, उसने विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की।

पर उसके पिताको यह सम्बन्ध करना स्वीकार न था। वह अपनी ही हैसियत और मान-मर्यादाके अनुकूल बड़े आदमीके साथ अपनी कन्या व्याहना चाहता था।

उसके माता-पिता वहाँसे पेरिस चले गये जिसे वहाँकी इन्द्रपुरी समझना चाहिये। वहाँके प्रसिद्ध धनी एम० जे० गेयोंकी जॉन मैरीपर दृष्टि पड़ी। वह धार्मिक बातोंसे कोरा था और जॉन मैरी भी उसे पसन्द करती हो यह बात नहीं है। जब जॉन मैरीने उसे देखा और उससे वार्तालाप हुई तो उसे कुछ भी आनन्द नहीं मिला। पर पिताने इसका कुछ खयाल न करके मैरीका उसके साथ सन् १६६४ की २१ मार्चको विवाह कर दिया। विवाहके समय जॉन मैरीकी अवस्था १६ वर्षकी और उसके स्वामीकी अवस्था ३८ वर्षकी थी। इस विवाहके होनेके बाद जॉन मैरी मैडम गेयोंके नामसे पुकारी जाने लगी।

मैडम गेयोंका यह विवाह उसकी इच्छासे नहीं हुआ था, पर वह चाहती थी कि मैं मीठे वचनोंसे स्वामीको प्रसन्न कर लूँगी और स्वयं भी सुखसे रहूँगी। पर ससुराल आकर कुछ दिन रहनेके बाद उसे ऐसा होना असम्भव-सा प्रतीत हुआ। उसके माता-पिताने उसे बड़े स्नेह और लाड़-चावसे पाला था। जॉन मैरीने समझा था कि चाहे ससुरालमें पिताके यहाँका-सा प्रेम और आदर न मिले, फिर भी सास उससे अच्छा ही व्यवहार करेगी। पर उसकी सासका मिजाज बड़ा रूखा था।

वह उससे बात-बे-बात नाराज ही रहती थी। यही नहीं, अपने पुत्रका मन भी उसकी तरफसे बिगाड़ती थी। फल यह होता था कि बेचारी गेयोंके दिन अश्रुजलोंसे ही अपनी आँखोंको सींचते बीतते थे।

मैडम गेयोंका स्वामी बिल्कुल मूर्ख हो, यह बात नहीं थी, पर उसका स्वभाव इतना तेज और असहिष्णु था कि वह घरमें सबको बात-बातपर दबाकर रखना चाहता था। इससे घरमें कोई सुखी नहीं रहता था। ऐसी दशामें मैडम गेयोंके हृदयमें उच्च भावोंका प्रकाशित न होना स्वाभाविक था। पर वह बड़ी अच्छी लड़की थी। उसमें बुद्धि थी, सहिष्णुता थी और उसका स्वभाव अच्छा था। उसने समझ लिया कि पतिके घरमें हृदयको मजबूत करके दुःख सहना ही चाहिये।

दुःख सहते-सहते उसकी आँखें यथार्थरूपसे खुल गयीं और उसने समझ लिया कि मेरा जीवन मङ्गलमय ईश्वरके हाथोंमें है और वही हर तरह मेरी रक्षा कर रहा है। उसने समझा कि मेरे दोषोंको दूर करनेके लिये भगवान्‌की इच्छासे ही मुझे दुःख झेलने पड़ रहे हैं जिन दुःखोंसे उसके हृदयमें पहले ज्वाला भभक उठती थी। उन दुःखोंसे अब उसके हृदयमें आध्यात्मिक प्रकाश प्रदीप्त होने लगा। उसके अहङ्कार और कामनाओंका नाश होने लगा। वह दोनों हाथ उठाकर ईश्वरकी प्रार्थना करती थी और भक्तिविह्वल होकर हृदयसे क्रन्दन करती थी।

इसके बाद वह पिताके घरमें गयी। वहाँ शुभ मुहूर्तमें सेण्ट फ्रांसिस-सम्प्रदायके एक योग्य साधुसे उसका परिचय हुआ।

यह साधु एक बड़ा तपस्वी था। उसने पाँच सालतक निर्जन वनमें तपस्या करके ईश्वरकी भक्ति प्राप्त की और योग-साधन किया था। इस समय उसका उद्देश्य लोगोंकी आध्यात्मिक उन्नति करना था। उस तपस्वीके पास जाकर मैडम गेयोंने अपने दुःखोंकी सब कथा सुनायी, और कहा कि, 'ईश्वरको प्राप्त करनेके लिये मेरे प्राण छटपटा रहे हैं, पर अभीतक बहुत चेष्टा करनेपर भी वे मुझे नहीं मिले हैं।'

उस तपस्वीने मैडम गेयोंसे कहा कि, 'बेटी! अभीतक तुम ईश्वरको बाहर ही देखती रही हो, इसीसे तुम्हारी चेष्टा सफल नहीं हुई। ईश्वर तुम्हारे हृदयहीमें विराजमान है, उसे तलाश करो, मिलेगा।'

वह तपस्वी ऐसी कई बातें कहकर चला गया। बातें साधारण-सी थीं, पर इस समय इन बातोंसे गेयोंके हृदयमें नये धार्मिक जीवनका सञ्चार हुआ। उसके हृदयमें बिजली-सी दौड़ गयी, वह समझने लगी मैं ईश्वरके अधिक निकट हूँ। उसने लिखा है—

'बाहरके अनुष्ठान करने और जगह-जगह घूमने-फिरनेसे ईश्वरके दर्शन नहीं होते। हम यह भी नहीं कहतीं कि, मनुष्य

अनेक प्रकारके ज्ञान प्राप्त करके ईश्वरको पानेकी चेष्टा करता है—यह गलत है । पर यदि हम अपने हृदयमें ईश्वरका दर्शन न करें, तो हम यह साबित नहीं कर सकते कि वह हमारा है, और हम उसके हैं ।'

सन् १६५८ की २२ जुलाईको मैडम गेयोंको नवीन ज्ञान लाभ हुआ । उस समय उसकी अवस्था केवल बीस वर्षकी थी । उस दिन भावावेश और आनन्दके कारण वह रातको बिल्कुल नहीं सोयी । उस दिनकी अवस्थाका उसने स्वयं इस प्रकार वर्णन किया है—

'उस समय मुझे यह मालूम होने लगा कि मानो ईश्वरका प्रेम बाणकी तरह मेरे हृदयमें बिंध गया है । इस प्रेमका स्पर्श बड़ा मधुर है । इस प्रेमरूपी हथियारसे मेरे हृदयमें जो घाव लगा है, मैं चाहती हूँ कि वह हमेशा बना रहे । जिसे मैं बरसोंसे तलाश कर रही थी, तपस्वीके अमूल्य उपदेशसे मैंने उसे अपने हृदयके भीतर ही पा लिया है । हे मेरे प्राणोंके ईश्वर ! तुम तो मेरे हृदय-मन्दिर-हीमें विराजते थे फिर भी मैं क्यों तुम्हें अबतक नहीं पा सकी ? अब मेरी समझमें इस महावाक्यका अर्थ आया है कि ईश्वर सब लोगोंके हृदयोंमें विराजता है ।'

मैडम गेयों अब इस बातके लिये व्याकुल हो उठीं कि उनका हृदय निर्मल-से-निर्मल होना चाहिये । महात्मा ईसामसीहने कहा है कि 'जिनका मन निर्मल होता है, वे धन्य हैं, क्योंकि

ईश्वरके दर्शन उन्हें ही होते हैं।' इस बातमें बड़ा भारी तत्त्व छिपा है। यह ठीक है कि ईश्वर सदा हृदयमें निवास करता है पर जबतक हृदय निर्मल—शुद्ध नहीं है, तबतक वहाँ उसके दर्शन किसी तरह नहीं हो सकते। हृदय शुद्ध करनेके लिये मनुष्यको संयम, वैराग्य और ईश्वरकी भक्तिकी आवश्यकता है। इसके लिये सब सुख और भोग-विलासोंको छोड़ देना चाहिये। यह समझकर उसने थियेटरोंमें जाना, गाना-बजाना आदि सभी आमोद-प्रमोदों-को बिल्कुल छोड़ दिया। उसने केवल अपने हृदयस्थ ईश्वरमें मन लगाया। वह घण्टों उस ईश्वरके ध्यानमें लगी रहती थी।

उसे अपने स्वामीसे खर्चके लिये बहुत धन मिला था, जिसको वह दुखी और असहायोंके कष्टोंको दूर करनेमें लगाती थी। जो अभागी स्त्रियाँ नारी-धर्मसे गिर जाती थीं और अपने पवित्र हृदयोंको मलिन करती थीं, मैडम गेयों हर तरह उनके संकट दूर करने और उन्हें दुःख-मुक्त करनेके कार्यमें लगी रहती थीं।

किन्तु उनकी सासकी दृष्टिमें स्त्रियोंके लिये यह सब करना अधर्म था। मैडम गेयोंका स्वामी कभी-कभी बिगड़ उठता था और उस समय वह मैडम गेयोंसे कठोर व्यवहार करते नहीं हिचकता था।

सन् १६७० के अक्टूबर महीनेमें मैडम गेयों शीतला रोगसे अत्यन्त पीड़ित हुई। इस रोगसे जर्जरित और शक्तिहीन

होनेपर भी ईश्वरमें उनका प्रेम कम नहीं हुआ, किन्तु बढ़ता ही गया। इस रोगसे वह तो अच्छी हो गयी, पर उसका कुसुमसे भी सुन्दर बालक उसकी गोद सूनी कर संसारसे चला गया। बड़ा लड़का तो दादीकी कुशिक्षासे ठीक नहीं हुआ, इसलिये माता छोटे बच्चेहीको स्नेहपूर्वक पालती थी। इस प्यारे बच्चेके चले जानेसे उसे चोट जरूर लगी, पर ईश्वरप्रेममें उसने कमी नहीं की। उसने कहा—'The Lord gave and the Lord hath taken away; Blessed be His name' अर्थात् 'उसी ईश्वरने उसे दिया था और उसीने उसे वापस ले लिया, उसकी जय हो।' सालभर बाद उसके स्नेही पिताका भी शरीरान्त हो गया। इसके थोड़े दिनों बाद उसकी प्राणोंसे प्यारी कन्या चल बसी। वह अद्वितीय सुन्दरी, सरल और धर्मभावापन्न थी। बड़ी होती तो उसमें माताके गुण होते। माताको प्रार्थना करते देख वह कहती 'क्यों माँ, क्या सोती है? नहीं, सोती नहीं है, प्रार्थना करती है।' यह कहती हुई वह बालिका भी हाथ जोड़कर ईश्वरकी प्रार्थना करने लगती थी।

अभी मैडम गेयांके इन दुःखोंका अन्त नहीं हुआ था। उसपर और भी भारी दुःख पड़नेवाला था। सन् १६७६ के जुलाई महीनेमें उसके पति सख्त बीमार हुए। मैडम गेयोंने बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। २४ दिन वह खाना-पीना-सोना सब भूलकर निरन्तर स्वामीकी सेवामें लग गयी। स्वामीकी आत्मामें अपनी

आत्माको मिलाकर वह ईश्वरसे स्वामीके कल्याणके लिये प्रार्थना करती थी। एक दिन घुटने टेककर नम्रतापूर्वक वह स्वामीसे बोली कि 'मैंने कुछ ऐसा ही कर्म किया है जिससे आपको ऐसा अधिक कष्ट हो रहा है। पर मैं जान-बूझकर आपको कभी दुखी करना नहीं चाहती। फिर भी मुझसे अनेक अपराध हुए हैं। आज मैं उन सबके लिये क्षमा करनेकी भिक्षा माँगती हूँ। कृपा कर प्रसन्न होकर मुझे क्षमादान करें।' अपनी साध्वी धर्मपत्नीकी ये बातें सुनकर रोगी होनेपर भी पतिका चेहरा एकदम खिल उठा और प्रेमसे आर्द्र होकर वह कहने लगा कि 'तुम मुझसे क्यों क्षमा माँगती हो ? क्या तुम यह नहीं जानती कि मैंने तुम्हें क्या सुख पहुँचाया ? दोष तो सब मेरा ही है, मैं ही तुमसे क्षमा-की भिक्षा माँगूँगा।'

इससे पाठक देखेंगे कि मैडम गेयों कितनी पतिपरायणा थी। अन्तमें योग्य डाक्टरोंकी चिकित्सा, तथा पतिव्रता पत्नीकी सेवाका कुछ भी फल नहीं हुआ। गेयों साहब उसी सन् १६७६ की २९ जुलाईको अपने बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर सदाके लिये इस संसारसे चल बसे।

इस समय साध्वी गेयोंकी शादी हुए १२ बरस ४ महीने हुए थे। उसकी अवस्था २८ वर्षकी थी। वह दो पुत्र और एक कन्या लेकर विधवा हुई थी। पतिकी मृत्युके बाद भी सासका वर्ताव उसके साथ अच्छा नहीं हुआ। कुछ समय बाद बड़ा दिन

आया, तब उसने साससे प्रार्थना की कि इस कष्टमें आप मुझे स्नेहसे गले लगावें; जो गलती हो माफ करें, और मुझे अपनी बेटी समझें। पर सासका हृदय बड़ा ही कठोर था, जरा भी नहीं पिघला। उसने कहा—'मेरा तेरा साथ रहना नहीं हो सकता। अब गेयोंने घर छोड़ना निश्चय किया। उधर बालकोंके पालन-पोषणका खयाल था और इधर स्वामीके घरवारकी रक्षा भी करनी थी। साथ ही सासको भी किसी तरह नाराज नहीं करना था। उसने अपने दो पुत्रोंको एक योग्य अध्यापकके सुपुर्द किया और छोटी कन्याको साथ लेकर दूर अपने योग्य एक अच्छा-सा स्थान रहनेको चुना। वहाँ वह लैटिन भाषा पढ़ने लगी। इससे उसका धर्मभाव विशेषरूपसे जागृत हुआ।

यूरोपमें विधवाओंका पुनर्विवाह अधर्म नहीं माना जाता। इसलिये विधवा गेयोंके पास भी शादीके पैगाम आये। उसकी अवस्था भी ज्यादा नहीं थी, पर उसने इस प्रस्तावको बिल्कुल घृणाकी दृष्टिसे देखा, और साफ इन्कार कर दिया। उसका मन दिन-दिन परमात्माकी ओर और भी बढ़ने लगा।

पश्चात् गेयों जैक्स-नगरमें गयीं। वहाँके लोगोंने उनके धर्म-जीवनकी बातें बड़े प्रेमसे सुन रक्खी थीं। उन्होंने उनकी अच्छी आवभगत की। वहाँ वह कुछ दिन बड़े सुखसे रहीं। उनका हृदय दिन-दिन उच्च धार्मिक भावोंसे दीप्त होने लगा। जो स्त्री-पुरुष धर्मभाव जागृत करनेकी इच्छासे उनके पास आते, उनका हृदय

भक्ति-रससे गद्गद हो जाता था। जैक्स-नगरमें वे दरिद्रोंकी दुर्दशा देखकर धनद्वारा उनके कष्टोंको दूर किया करती थीं। उनकी सेवा और सुन्दर व्यवहारसे पीड़ित स्त्री-पुरुषोंको बहुत सुख मिलता था। अनेक नर-नारी पापोंसे कातर होकर साध्वी गेयोंके पास आते और खुलकर अपने मनकी सब बातें कह देते थे। वह उनके हृदयोंमें धर्मभाव जागृत करती थीं। उनके प्रयत्नसे अनेक लोग ईश्वरके शरणागत हुए और सदाके लिये पापोंको छोड़कर धर्म-पथपर चलने लगे।

तदनन्तर जैक्स-नगरको छोड़कर वह दूसरी जगह चली गयीं। वहाँ उन्होंने अपने रुपयोंसे एक अस्पताल बनवाया और स्वयं रोगी स्त्री-पुरुषोंकी सेवा करने लगीं। फिर उन्हें घटना-चक्रसे अनेक स्थानोंमें घूमना पड़ा। दुःखी स्त्री-पुरुषोंके नयनोंमें जल देखकर उन्हें भी अश्रुपात होता था और अनेक दरिद्र, अनाथ और असहाय स्त्री-पुरुषोंको उनसे अनेक प्रकारकी सहायता मिलती थी। वह रोगियोंकी पूरी तरह टहल करती थीं, उनके घावोंको खुद धोतीं और मलहम लगाती थीं। जो लोग मर जाते थे उनके क्रिया-कर्म करनेमें अपने पाससे खर्च करती थीं। वह अनेक कारीगरों और गुणियोंको गुप्तरूपसे धनकी सहायता देकर उनका उत्साह बढ़ाती थीं।

फ्रांसमें उस समय लोगोंकी धार्मिक दशा बहुत बिगड़ी हुई थी। भक्तिमती गेयों बुरे संस्कारोंको दूर कर दृढ़तासे लोगोंमें

सच्चे धार्मिक भावोंका प्रचार कर रही थीं। इससे कितने ही पाखण्डी उनके शत्रु हो गये और उनके काममें बाधा डालने लगे। वह घूमती-घूमती पेरिसमें आयीं। यहाँ अनेक स्त्री-पुरुष उनका पवित्र जीवन देख और उनका मधुर उपदेश सुनकर धर्म-पथपर अग्रसर होने लगे। भक्तिमती गेयोंने ऊपरकी बातें छोड़कर केवल ईश्वरको धर्मके सिंहासनपर विराजमान कराया और वह सर्वत्र उन्हींकी महिमाका प्रचार करने लगीं। उन्होंने लोगोंको स्पष्ट भाषामें यह समझा दिया कि 'स्वयं ईश्वर ही मनुष्यके हृदयमें शान्ति प्रदान करता है। उसी ईश्वरको जीवन अर्पित करनेसे वास्तवमें मुक्ति मिलती है।'

भक्तिमती गेयोंकी यह सत्यवाणी मिथ्या धर्मध्वजी और पाखण्डी रोमन कैथोलिक ईसाई नहीं सह सके। वे लोग उनपर धर्मद्रोहका अपराध लगाना चाहते थे, पर वह देशके किसी कानूनमें नहीं आती थीं। इसलिये उनके कुछ शत्रुओंने एक झूठी, जाली चिट्ठी बनायी और उसे अदालतके सामने पेश किया। राजाने भक्तिमती गेयोंको जेलखानेमें डालनेकी आज्ञा दे दी। वह सेण्ट मेरी जेलमें कैदीकी तरह रक्खी गयीं। उनकी छोटी कन्या उनके पास थी। अधिकारियोंको यह सहन न हुआ, उन्होंने कन्या ले ली। तब वह ईश्वरका ध्यान करने लगीं और अनेक दुःखोंको झेलने लगीं। उस समय वह भक्तिरसपूर्ण कविताएँ बनाने लगीं।

उसी अवसरपर एक शक्तिशालिनी महिलाकी भक्तिमती गेयोंसे बातचीत हुई। उस महिलाने अच्छी तरह समझ लिया कि साध्वी गेयों एक सच्ची धर्मशीला नारी है और धर्महीके कारण कष्ट उठा रही है। उस महिलाका राजापर बड़ा प्रभाव था। उसने राजासे सब सच्चा-सच्चा हाल कह सुनाया। उसकी सिफारिशसे गेयों आठ महीने बाद जेलसे छूट गयीं।

उस समय फ्रांसमें फेनेलो नामका एक असाधारण धार्मिक पुरुष था। वह बड़ा पण्डित, बड़ा प्रतिभा-सम्पन्न और महान् ईश्वर-भक्त था। देशके हजारों आदमी बड़ी श्रद्धासे उसके चरणोंमें अपना सिर झुकाते थे। भक्तिमती गेयोंका उनसे घनिष्ठ बन्धुत्व हो गया। गेयोंका पवित्र जीवन, भक्तिभाव और प्रतिभा देखकर फेनेलो उनपर बड़ी श्रद्धा करने लगा। यही नहीं, उसने उनकी कविताओंको पढ़ा और उनके भक्तिपूर्ण धर्मभावका समर्थन करने लगा।

इससे चारों तरफ आग फैल गयी और बड़ा धर्मान्दोलन खड़ा हो गया। पाखण्डी धर्मप्रचारक कहने लगे कि, मैडम गेयों बड़ी मायाविनी स्त्री है। बिना जादू जाने वह फेनेलोके समान असाधारण पुरुषपर इतना प्रभाव कैसे डाल सकती है?

अब शत्रुदल मिलकर साधु फेनेलो और तपस्विनी गेयोंपर मिथ्या प्रहार करने लगे। फल यह हुआ कि फेनेलोको अपना

कर्मक्षेत्र छोड़कर एक दूर देशमें निर्वासितकी तरह रहना पड़ा, और तपस्विनी गेयों द्वारा जेलमें डाल दी गयीं। वह चार वरस-तक जेलमें रहीं और इस बार उन्हें किसी प्रकारकी स्वतन्त्रता नहीं दी गयी। पर वह सदा ईश्वरके ध्यानमें मग्न रहती थीं

वह जब जेलसे छूटीं, पेरिसमें उनके लिये कोई स्थान ठीक नहीं था। इसलिये उन्हें अपने देशसे दूर रहना पड़ा। पहले ही अनेक देशोंके धार्मिक पुरुष तपस्विनी गेयोंके धर्म-जीवनकी प्रशंसा सुन चुके थे। इङ्गलैण्ड, जर्मनी आदि देशोंसे अनेक स्त्री-पुरुष उनके दर्शनके लिये आये। उन्होंने लोगोंके वड़े अनुरोध और आग्रहसे अपना आत्मचरित लिखा और इङ्गलैण्डके एक भले आदमीको उसे दे दिया। तपस्विनी गेयोंको धर्मका सच्चा बोध हो गया था, इसीलिये लोगोंपर उनका प्रभाव पड़ता था। उनकी वाणी मर्म-स्पर्शिनी होती थी। उन्होंने ईश्वर-प्रार्थनाके सम्बन्धमें कहा है कि 'प्रार्थना क्या है? निश्चय ही कुछ चुने हुए शब्दोंका उच्चारणमात्र कर देना ही प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना उससे आगे-की चीज़ है। जिस दशामें आदमीके हृदयमें ईश्वरपर पूरा विश्वास और प्रेम हो जाता है, मनुष्यकी उसी अवस्थाको प्रार्थना कहते हैं।' तपस्विनी गेयोंका कथन है कि 'जो दुःख नहीं सह सकते हैं, वे ईश्वरको नहीं पा सकते।'

अब उनका अन्तिम समय आ गया। वह धनीकी कन्या, धनीकी पत्नी, बड़ी रूपवती, गुणवती, सुशिक्षिता और धर्मशीला

रमणी थीं, किन्तु सत्तरह वर्षकी अवस्थासे अन्ततक उन्हें दुःखोंहीसे संग्राम करते बीता। जिसे संसारमें सुख कहते हैं, वह उन्हें कभी नहीं मिला। पर अब उनके सब दुःखोंका अन्त हुआ और वे ६० वर्षकी अवस्थामें ९ जून सन् १७१७ को इस असार संसार-को छोड़कर सदाके लिये उस सच्चिदानन्दके चरणोंमें चली गयीं। इस तपस्विनीने मृत्युसे पहले ईश्वरकी प्रार्थनामें यह लिख रक्खा था कि 'मैंने आपहीसे सब कुछ पाया है और आपहीको सब अर्पण करके मैं जाती हूँ। हे ईश्वर, आपकी जो इच्छा हो, वह करें। मैं अपना शरीर और आत्मा आपको अर्पण करती हूँ। आप अपनी इच्छा पूरी करें।'

विश्वास है कि भक्त पाठक और पाठिकाएँ इस तपस्विनी-के जीवनचरितसे उचित शिक्षा लाभ करेंगे।
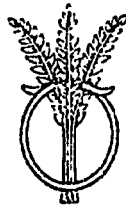
साध्वी लुइसा
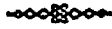
या एक ऐसा आदर्श सद्गुण है कि जिसके कारण हम अपनेको मनुष्य कह सकते हैं। दयाहीन मनुष्य और पशुमें कुछ भी अन्तर नहीं है। किसी भी जीवको दुःखसे व्याकुल सुन या देखकर जो चित्त पिघल जाता है और उसका दुःख दूर करनेके लिये विना किसी शर्तके चित्तमें जो एक त्यागमयी सात्त्विकी वृत्ति उठती है, उसीका नाम दया है।

जब कोई बालक अपने भाई-बहिनोंको कष्ट देता है तो उसका पिता उसे दण्ड देता है, वैसे ही ईश्वर हमारा परम पिता है और उसको दरिद्र-धनी, राव-रंक सभी पुत्र एक समान प्रिय हैं, इसलिये जो किसीके साथ निर्दयताका व्यवहार करता है, उसे वह परमात्मा उचित दण्ड देता है।

दयामय प्रभुका दयापात्र बनकर उसके महत्त्वको जाननेके लिये दुखियोंके दुःखोंको दूर करनेमें तन-मन-धनसे लग जाना परमावश्यक है। निराश्रयोंको आश्रय, अज्ञानियोंको ज्ञान, वस्त्र-हीनोंको वस्त्र, भूखोंको अन्न तथा प्यासोंको जल देकर हम उनके दुःखोंको बहुत कुछ घटा सकते हैं। पीड़ित प्राणिमात्रको अपने त्यागसे सुखी रखनेका हमारे अन्दर भाव होना चाहिये।

विद्वान् भूले-भटकोंको उपदेश देकर, बलवान् अपने बलसे निर्बलोंकी रक्षा कर, धनी दीन-दुखियोंको आवश्यकतानुसार धन देकर और असमर्थ केवल मधुर वाणीसे सहानुभूति दिखाकर ही दयाका बर्ताव कर सकते हैं। दयामें ही मनुष्यत्व भरा है। जो लोग अपनेको यथार्थ मनुष्य बनाना चाहते हैं, उन्हें दयालु बननेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

जो मस्तकपर सोनेका मुकुट और गलेमें रत्नोंके हार धारण कर सजे हुए सिंहासनपर मालिकके रूपमें बैठनेका अधिकार रखते हैं और महलोंमें सुखपूर्वक वास करते हैं, उनको तो ईश्वरकी करुणाका स्मरण कर अवश्य ही दयालु होना चाहिये। सांसारिक ऐश्वर्यमें रचे-पचे हुए अधिकांश मनुष्योंद्वारा इस संसारमें जैसा कुछ होना चाहिये, वैसा प्रायः नहीं हुआ करता है। उनकी अपनी स्थिति और ऐश्वर्यका मद उनके विवेकपर ऐसा परदा डाल देते हैं जिससे ऐश्वर्यहीन दीन स्थितिके लोगोंकी दशा वे स्पष्ट देख ही नहीं पाते। इसीसे विलासमय राजकुटुम्बोंमें प्रायः दयाका अभाव ही होता है। दीन-दुखियोंके करुण दीर्घ निःश्वास राजमहलोंकी कठिन दीवारोंको छेदकर उनके अन्दर रहनेवाले सुबह-शाम बेफिक्र लोगोंके हृदयमें करुणाका सञ्चार नहीं कर पाते। यही कारण है कि जब किसी राजमहलसे दयाकी तनिक-सी भी ध्वनि आती है तो लोग उसे नयी-सी बात समझकर उसपर मुग्ध हो जाते हैं और उस महलमें रहनेवालेके प्रति स्वाभाविक ही

लोगोंकी श्रद्धा जागृत हो उठती है और वे उसे देवता या ईश्वर ही मानने लगते हैं।

यहाँ आज यूरोपकी एक ऐसी दयामयी रानीकी संक्षिप्त करुण-कहानी लिखी जाती है, जो दयाकी मूर्ति थी, जो अपने हृदयकी कोमलतासे हजारों नर-नारियोंकी श्रद्धा-भाजन बन गयी थी। उसके पुण्यमय जीवनपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि मानो स्वर्गसे देवभाव प्राप्त करके ही उसने मृत्युलोकमें पदार्पण किया था।

उस साध्वीका नाम था लुइसा। उसने जर्मनीके एक प्रतिष्ठित कुटुम्बमें जन्म ग्रहण किया था। उसकी माता बड़ी बुद्धिमती थीं। वह जानती थी कि यदि लुइसाकी शिक्षाका प्रबन्ध अभीसे अच्छी तरह हो जायगा तो इसके सुकुमार हृदयमें धर्मभाव खिल उठेगा। अतः माताने कन्याकी शिक्षाका अच्छी तरह प्रबन्ध कर दिया, और उसके परिश्रमके फलस्वरूप लुइसाके जीवन-पुष्पकी कलियाँ विलक्षण रूपसे खिलने लगीं। परन्तु माताकी देख-रेखका सौभाग्य उसे बहुत थोड़ा मिला। छोटी ही उम्रमें माताका परलोकवास हो गया और लुइसाकी शिक्षा और उसके पालन-पोषणका भार उसकी दादीपर आ पड़ा।

लुइसाकी आयु बढ़नेके साथ ही उसके रूप-गुण भी बढ़ने लगे। उसके उज्ज्वल हास्यमें सरस सरलता और खिले हुए नेत्रोंमें सुमधुर भाव टपकने लगे। दुखियोंकी करुण-कहानी सुनकर तो उसके मनमें सहानुभूतिकी पवित्र तरंगें उछलने लगती थीं।

उसका हृदय भक्तिभाव और करुणासे भरा था। वह प्रतिदिन सरल-हृदयसे श्रद्धा-भक्तिके साथ ईश्वरकी प्रार्थना किया करती, जिससे उसके हृदयमें नवजीवनका सञ्चार हो उठता था। किसी भी रोगी या अपाहिजको देखकर उसका हृदय दयासे पिघल उठता और उसका दुःख दूर करनेके लिये यह उसी समय तन-मन-धन न्योछावर करनेको तैयार हो जाती थी। एक बार लुइसाकी दादी और अध्यापिका उसको घरमें न पाकर बहुत चिन्तित हुई। पीछेसे पता लगा कि लुइसा उस समय एक अनाथ दुखिया बालिकाके पास बैठकर उसे मीठे और स्नेहपूर्ण शब्दोंमें धर्मोपदेश सुना रही थी। लुइसा जब तेरह सालकी थी तब उसने अपने मन-पसन्दकी चीजें खरीदनेके लिये धीरे-धीरे कुछ पैसे इकट्ठे कर लिये थे। एक दिन एक कंगाल दुखिया, विधवा घरमें भीख माँगने आयी। उस भिखारिनकी दुःख-कथा सुनकर लुइसाकी आँखें डबडबा आयीं और उसने वे सब पैसे उसी क्षण लाकर उसको दे दिये। वास्तवमें उसने आज मनचाही चीज ही खरीद ली। इन घटनाओंसे लुइसाके सद्गुणोंकी प्रशंसा चारों तरफ फैलने लगी। उसकी सरलता, पवित्रता, दया और धार्मिकताको देखकर सब लोग उसके प्रति श्रद्धा करने लगे।

अब लुइसा विवाहके योग्य हुई, उसके पिताने प्रशियाके राजकुमारको सब प्रकारसे सुयोग्य देखकर सन् १७९३ ई० के २३ वें दिसम्बरको लुइसाके साथ उसका सम्बन्ध कर दिया। रूप-गुणवती लुइसाने अपने सुन्दर बर्तावसे स्वामीके मनपर विजय

प्राप्त कर ली। धन-यौवनके मदमें चूर विलासिनी स्त्रियोंकी तरह राजमदमें उन्मत्त करनेवाली अनेक प्रकारकी विलास-सामग्रियाँ मौजूद रहनेपर भी लुइसाके हृदयमें अङ्कुरित वैराग्यका पौधा नहीं मुरझाया। लड़कपनकी धर्म-शिक्षाके प्रभावसे उसका अन्तःकरण अनुपम विवेक-वैराग्यसे भरा रहा। राजमहलका वैभव उसको अपने धर्मसे विचलित न कर सका। इसी धर्म-भावसे जाग्रत् रहनेके कारण ही वह राजसिंहासनपर बैठकर भी स्वयं दुखियोंकी झोपड़ियोंमें जाती और अपने आँचलसे उनके आँसुओंको पोंछती। गरीबोंकी सेवा करनेमें उसे जो अतुल आनन्द मिलता, उसका वर्णन नहीं हो सकता। इस विषयमें उसने एक बार अपनी दादीको पत्रमें लिखा था कि 'रानी होकर भी मैं गरीबोंकी मनचाही सहायता कर सकती हूँ, यही मेरे जीवनमें सर्वश्रेष्ठ सुख है।'

एक बार लुइसाके स्वामीने उसकी प्रसन्नताके लिये उसे साथ लेकर बड़े ठाट-बाटसे राजमार्गपर अपनी सवारी निकालनी चाही। लेकिन रानी लुइसाने स्वामीके स्नेहपूर्ण वाक्योंका अनादर न कर उसे विनयपूर्वक समझाते हुए उत्तर दिया—'स्वामिन्! इतने व्यर्थ खर्च और झूठे आमोद-प्रमोदसे क्या लाभ होगा? आप इस प्रकारके झूठे ठाटमें जो धन खर्च करना चाहते हैं वह यदि मातृ-पितृहीन निराश्रय अनाथ बालक-बालिकाओं और विधवाओंके दुःख-निवारणमें खर्च किया जायगा तो मैं अधिक सुखी होऊँगी।'

रानी लुइसाको विवाहके समय उपहारमें जो सब वस्तुएँ मिली थीं उनमेंसे अधिकांश उसने गरीब और निराधार बालकोंको

बाँट दी। विवाहके बाद लुइसाके स्वामीने उसपर बहुत प्रेम होनेके कारण, उसकी वर्षगाँठके निमित्त एक हवादार सुन्दर महल बनवा दिया, तथा उसे और भी मनोवाञ्छित वस्तुएँ देनेकी इच्छा प्रकट की। इसपर लुइसाने कहा कि 'मुझे अपने प्यारे गरीबोंकी सेवाके लिये आप जो कुछ देना चाहें, खुशीसे दें। अपने ऐश-आरामके लिये मुझे कुछ नहीं चाहिये।' रानीकी उच्च अभिलाषा सुनकर राजाके हृदयमें हर्षकी लहरें हिलोरें मारने लगीं। उसने तुरन्त ही प्रसन्नमनसे हँसते हुए रानीको गरीबोंकी सेवामें खर्च करनेके लिये बहुत-सा धन दे दिया। इस धनको पाकर रानी बहुत खुश हुई और गरीब बीमार अपाहिजोंकी सेवा करके उनके आशीर्वाद प्राप्त करने लगी।

एक बार लुइसा अपने स्वामीके साथ पोष्टडैमके पास पारेफ नामक सुन्दर ग्राममें रहनेके लिये गयी। यह वहाँ प्रजामें हिल-मिलकर इतनी सादगी और प्रेमके साथ रहने लगी कि कुछ समय-के लिये तो लोग प्रेमवश इस बातको भी भूल गये कि यह हमारी रानी है। यह आनन्दसे हँसती हुई गरीबोंके घर जाती, उन्हें नाना प्रकारके धर्मोपदेश सुनाकर और उनके दुःखमें सहायता पहुँचाकर सुखी करती। कई बार मिठाई मँगाकर उनके बालकों-को खिलाती। कभी राह चलते अनाथ-बालकोंको स्नेहसे उठाकर अपनी गोदमें ले लेती। प्रशियाकी रानीकी यह बातें देखकर लोग मुग्ध हो जाते। रानी इन दिनोंको अपने लिये बहुत ही

सुखके दिन समझती और कहती कि 'श्रीमती महारानी साहिबा-की जगह मुझे यदि लोग 'दयालु बहिन' कहकर पुकारें तो वह मुझे अधिक पसन्द है।'

लुइसाको उत्तम ग्रन्थ पढ़नेका बहुत शौक था। उसने कई विद्वत्तापूर्ण निबन्ध लिखे हैं। सरलता, कोमलता और विनयसे उसका स्वभाव बहुत ही मधुर हो गया था। लोगोंके दुःख देख-कर उसका हृदय भर आता था। कभी-कभी यह दुखी प्राणियोंके दुःखसे पीड़ित हो विषाद-संगीत गाने लगती। इसके कोमल कण्ठसे निकले हुए करुणापूर्ण गीतोंको सुनकर कठोर पत्थरके हृदय भी पिघल जाते और उन लोगोंकी आँखोंसे विवश आँसुओं-की धारा बहने लगती।

ई० सन् १७९७ में साध्वी लुइसाके प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी 'विलियम प्रथम' ने जर्मनराज्यकी फिरसे स्थापना की थी।

रानी लुइसाने आजीवन दुखियोंकी सेवा करनेमें ही परम सुख माना। यह जब घूमनेके लिये महलसे बाहर निकलती तब स्नेहमयी जननीके सामने बच्चोंकी भाँति इसके चारों ओर अनाथ गरीबोंकी भीड़ लग जाती। अंगरक्षकोंके बहुत चेष्टा करनेपर भी लोग वहाँसे नहीं हटते। रानी लुइसाको यह भीड़ बड़ी प्यारी लगती और यह इन भूखे गरीबोंको अन्न, धन तथा उनके बालकोंको मिठाई और खिलौने देकर खुश करती। मार्गमें इकट्ठे हुए लोग इस अपूर्व दृश्यको देखकर आनन्दसे गद्गद हो दयालु महारानीकी जय-जय-ध्वनि करने लगते।

'सबै दिन होत न एक समान' की कहावतके अनुसार

सुखके बाद दुःख आना विधाताका विधान है। रानी लुइसाके भी सुखके दिन पलटे। नेपोलियनके सामने यदि प्रशिया और आष्ट्रिया एक साथ मिल जाते तो नेपोलियन उनको नहीं हरा सकता। परन्तु प्रशिया आष्ट्रियासे अलग रहा। कुछ दिनों बाद नेपोलियनने प्रशियाके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। इस प्रसंगपर राजाको तो लोगोंसे सहायता मिलनेकी आशा नहीं थी, परन्तु रानी लुइसा आशावादिनी थी, उसमें वीरता और उत्साह आदि गुण थे। अतएव उसने निराश हुए सैनिकोंको बुलाकर वीरतापूर्ण भाषण दिया और देशके प्राचीन योद्धाओंकी वीरता तथा स्वतन्त्रताका स्मरण दिलाकर उन्हें युद्ध करनेको प्रोत्साहित किया।

ई० सन् १८०५ के नवम्बरमें पोष्टडेम ग्रामके छोटे-से मन्दिरमें राजा और रानी लुइसा रूसके बादशाहके साथ मिले। और वहाँ उन्होंने स्वर्गवासी महाराज फ्रेडरिककी समाधिके सामने देशको शत्रुओंसे बचाकर स्वतन्त्र बनानेकी प्रतिज्ञा की। इस प्रतिज्ञाके पालन करनेके लिये उन्होंने बड़े-बड़े कष्ट सहे, और विधाताके कठिन विधानसे प्रतिज्ञाके फलस्वरूप उस शुभ दिवसका दर्शन करनेसे पहले ही रानी लुइसाकी जीवनयात्रा समाप्त हो गयी!

ई० सन् १८०६ में नेपोलियनके साथ लुइसाके पतिका युद्ध हुआ। इस युद्धके समय लुइसा महलमें नहीं बैठी थी, वह अपने प्रभावशाली व्याख्यानोंद्वारा वीरोंको देशके लिये मर मिटनेको प्रेरणा कर रही थी। उसके इस प्रयत्नसे अनेक शूरवीर समरक्षेत्रमें कर्तव्य पालन करते हुए वीरगतिको प्राप्त हुए। रानीमें जितना आत्मविश्वास और शौर्य था, राजामें अपनी शक्तिके प्रति

उतना ही अविश्वास और कायरपन था। घरकी कलहके कारण पड़ोसी और बन्धु-बान्धवगण उसको सहायता देनेके लिये तैयार नहीं थे, राजनीति और युद्धके दाव-पेच उसने सीखे ही नहीं थे, अतः दूसरेपर विश्वास रखकर ही उसको काम करना पड़ता था। आत्मविश्वासकी कमीके कारण राजा अपनी सेनापर स्वयं नेतृत्व नहीं कर सका और 'जेना' के युद्धमें उसको मैदान छोड़कर भागना पड़ा। वीर नेपोलियनने विजय प्राप्तकर राजधानी बर्लिनमें प्रवेश किया। अब रानी लुइसाके दुःख और आपत्तिका पार न रहा। वह इस बातको समझती थी कि यह स्थिति उसके पतिमें साहस, धैर्य और दूरदर्शिताकी कमीके कारण ही प्राप्त हुई है तथापि उसने पतिके प्रेमपर तनिक भी ठेस नहीं लगने दी। स्वामीमें भूलकर भी दोष नहीं निकाला। इतना ही नहीं, उसने अपने मनमें स्वामीके दोषोंका स्वप्नमें क्षणभरके लिये विचारतक भी नहीं आने दिया। इस विपत्तिके समय उसका पतिप्रेम और भी दृढ़ हो गया। वह और भी मन लगाकर एक आदर्श पत्नीकी भाँति उसकी सेवा-टहल करने लगी। घोर आपत्तिकालमें उसने एक दिन भी निराशाका अनुभव नहीं किया। 'प्रशिया एक दिन फिर स्वतन्त्रता देवीकी गोदमें बैठेगा।' इस आशाको उसने कभी मनसे नहीं हटाया। उसके सामने नहीं, तो पीछेसे उसकी यह आशा अवश्य ही सफल भी हुई। आजकल जरा-से दुःखके कारण अपने पतिको तलाक देना अच्छा समझनेवाली पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त रमणियाँ इस प्रसंगसे शिक्षा ग्रहण करें।

धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपत काल परखियहि चारी॥

इस कठिन परीक्षामें रानी लुइसा सर्व प्रकारसे उत्तीर्ण हुई। उसकी इस सफलताका कारण बाल्यावस्थामें प्राप्त हुआ विवेक ही है। धर्म ही आपत्तिकालमें धैर्य देकर सहायता दे सकता है।

राज्यभ्रष्ट होनेके बाद उसने अपने पिताको एक महत्त्वपूर्ण पत्र लिखा था, उसमें उसके गहरे धर्मविश्वास तथा राजनीतिज्ञता-का परिचय मिलता है। उस लम्बे पत्रका कुछ अंश इस प्रकार है—

'पूज्य पिताजी !

मेरा सारा सांसारिक ऐश्वर्य चला गया है, सदाके लिये नहीं तो, थोड़े समयके लिये तो अवश्य ही उसका नाश हो गया है। परन्तु मैं प्रसन्न हूँ, इस जीवनमें मुझे अधिक सुखकी लालसा नहीं है। मैंने प्रभुको अपना आत्मसमर्पण कर दिया है। शान्त चित्त-से प्रभुमें विश्वास रखनेके कारण मुझे इस सांसारिक विपत्तिमें भी अतुल शान्ति मिल रही है। प्राचीन समयकी प्रणाली और राजनीति-को बदलनेकी ईश्वरकी प्रबल इच्छा थी, इसीसे ऐसा हुआ है।'

× × ×

'संसारमें बुद्धिमान्-से-बुद्धिमान् और अच्छे-से-अच्छे मनुष्य भी असफल हो जाया करते हैं। यह सत्य है कि फ्रांसका सम्राट् नेपोलियन राजनीतिज्ञ और प्रपञ्ची है। परन्तु यदि आस्ट्रिया और प्रशियावासी एक साथ मिलकर सिंह-सदृश पराक्रमसे उसका सामना करते और पराजित नहीं भी हुए होते, तब भी हमको रणक्षेत्रका त्याग करना ही पड़ता और शत्रु इस भूमिमें अधिकार कर ही लेते। नेपोलियनसे हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

ईश्वरने उसकी सहायता की है, यह कहना तो ईश्वरकी निन्दा करना है। सत्य तो यह है कि वृक्षकी जिन शाखाओंसे चैतन्य चला गया है और जिसको संसार भूलसे वृक्ष मान रहा है उन्हें काटनेके लिये प्रभुने नेपोलियनको निमित्त बनाया है। सर्व-शक्तिमान्, सर्वव्यापी ईश्वरमें दृढ़ विश्वास ही मुझे इस निश्चयपर लाकर उपस्थित करता है कि प्रशियाको ईश्वर अच्छे दिन भी जरूर दिखलावेगा। इस संसारमें केवल शुभ कर्मोंहीका शुभ फल मिलता है इसीलिये मैं यह नहीं मानती कि नेपोलियन दृढ़तापूर्वक कभी राज्यसिंहासनपर बैठ सकेगा। एकनिष्ठा, सत्य और न्याय-यही तीनों गुण चिरस्थायी और अखण्ड हैं। नेपोलियन राजनीति-कुशल और व्यवहारविशारद तो है, परन्तु उसमें न्याय, धर्म, विनय, निरभिमानता आदि गुण नहीं हैं। जिसमें ये गुण नहीं हैं उसका पतन अवश्यम्भावी है। इससे मुझे आशा है कि हालकी बुरी स्थितिका परिणाम अच्छा ही होगा। जो कुछ हुआ है और जो कुछ हो रहा है वह सब हम पथिकोंको और भी अधिक उच्च, निर्मल और श्रेष्ठ मार्गपर पहुँचानेका ईश्वरनिर्मित साधन है। लक्ष्य बहुत दूर है, इसलिये सम्भव है कि इस प्रयत्नमें ही मेरा मृत्युकाल आ जाय और मैं इस देहसे वहाँतक न पहुँच सकूँ।'

'ईश्वर जो कुछ करता है उसीमें हमारी भलाई है, इस विचारसे मेरे हृदयमें दृढ़तासे अंकित आशाके कारण मुझे आश्वासन और धैर्य मिल रहा है। सभी सांसारिक वस्तुओंके परिवर्तनशील

होनेके कारण हमलोगोंको प्रत्येक क्षण दुःख सहनेके लिये तैयार रहना चाहिये ।'

'माननीय पिताजी ! मैं एक अबला नारी राज्यसम्बन्धी विचारोंमें जितने प्रयत्न कर सकती थी, मैंने उतने किये । सम्भव है कि ये अपूर्ण रहें । आपके सामने इन विचारोंको उपस्थित करनेके लिये आप क्षमा करेंगे । परन्तु यह तो आपको विश्वास होगा कि आपकी पुत्रीने विपत्तिकालमें भी ईश्वरका सहारा ले रक्खा है । लड़कपनमें आपके द्वारा प्राप्त धर्मके सिद्धान्त और ईश्वरके डरके शिक्षणके लिये मैं आपकी ऋणी हूँ । उस शिक्षाका सुन्दर फल मिलता जा रहा है और जबतक मेरे शरीरमें प्राण है तबतक इसका परिणाम अच्छा ही होता रहेगा ।'

'पिताजी ! आपको यह जानकर आनन्द होगा कि हमारे ऊपर विपत्ति आनेपर हमारे दाम्पत्यजीवन और गृहस्थाश्रम-धर्ममें अन्तर आनेकी अपेक्षा हमारा प्रेम-बन्धन अधिक दृढ़ हो गया है । मैं संसारके सर्वोत्तम पुरुषके प्रेम और विश्वासकी पात्री होनेके कारण गौरव, आनन्द और सुखका अनुभव करती हूँ । हम परस्पर इतने एकस्वरूप हो गये हैं कि एककी इच्छा ही दूसरेकी इच्छा बन गयी है । मैंने यह स्वाभाविक उद्गार यही सोचकर प्रकट किये हैं कि इन सब बातोंको जाननेसे मेरे श्रेष्ठ और स्नेहमय पिताके समान और कोई प्रसन्न न होगा ।'

इस पत्रसे रानी लुइसाके ईश्वरके प्रति दृढ़ विश्वास और श्रद्धाका तथा पतिप्रेमका पूर्ण परिचय मिलता है । कौन कह

सकता है कि लुइसा परम भक्तिमती और आदर्श पत्नी नहीं थी? उसने घोर विपत्तिकालमें भी धैर्य और विश्वास नहीं छोड़ा। यहाँतक कि अपने मनमें तुच्छ विचारोंकी छायातक नहीं पड़ने दी।

लुइसाके फेंफड़ेमें पीड़ा हो गयी और उसका मृत्युकाल समीप आ पहुँचा। व्याधिके समय वह ईश्वरसे प्रार्थना करती कि 'भगवन्! मेरा परित्याग मत करना।' अन्तमें जब उसे यह प्रतीत हो गया कि मृत्युमें विलम्ब नहीं है तब उसने स्वामीके हाथमें अपने दोनों हाथ रखकर कहा कि 'स्वामी! अब विदा दो, सुनो, ईश्वर मुझे बुला रहा है।' इतना कहकर उस भक्ति-परायणा, कर्त्तव्यशीला, राजनीति-विशारदा, दयामयी वीर रानीने इस संसारको त्याग कर दिया। सन् १८१० ई० की २३ वीं दिसम्बरको उसका शव दफनाया गया।

रानी लुइसा संसारसे चली गयी, परन्तु उसकी पुण्य-कथा और पावन नाम संसारके हृदयपर अंकित हो गया। आज भी इस करुणामयी रानीकी दयापूर्ण कथाओंको सुनकर प्रशियाकी स्त्रियाँ उसके प्रति श्रद्धा प्रकट करती हैं और उसका अनुकरण करके अपने जीवनको उन्नत बनानेका प्रयत्न करती हैं। लुइसाने अपने देशको स्वतन्त्र बनानेका यत्न किया वह निष्फल नहीं गया, उसकी मृत्युके तीन ही वर्ष बाद उसका देश प्रमादकी निद्रासे जाग्रत् हुआ और स्वतन्त्रताके युद्धमें पुनः विजयी होकर स्वतन्त्र हो गया।

श्रीहरिः

गीताप्रेस, गोरखपुर

की

पुस्तकोंकी संक्षिप्त सूची

माघ १९९०

(१) पुस्तकोंका विशेष विस्तार तथा पूरा नियम जाननेके लिये बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

(२) हमारे यहाँ अनेक प्रकारके धार्मिक छोटे, बड़े, रंगीन और सादे चित्र मिलते हैं। विशेष जानकारीके लिये चित्र-सूची मँगाइये।

कुछ ध्यान देने योग्य बातें—

(१) हर एक पत्रमें नाम, पता, डाकघर, जिला बहुत साफ देवनागरी अक्षरोंमें लिखें। नहीं तो जवाब देने या माल भेजनेमें बहुत दिक्कत होगी। साथ ही उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिये।

(२) अगर ज्यादा किताबें मालगाड़ी या पार्सलसे मँगानी हों तो रेलवे-स्टेशनका नाम जरूर लिखना चाहिये।

(३) थोड़ी पुस्तकोंपर डाकखर्च अधिक पड़ जानेके भयसे एक रुपयेसे कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती, इससे कमकी किताबोंकी कीमत, डाकमहसूल और रजिस्ट्री-खर्च जोड़कर टिकट भेजें।

(४) एक रुपयेसे कमकी पुस्तकें बुकपोस्टसे मँगवानेवाले सज्जन ।) तथा रजिस्ट्रीसे मँगवानेवाले ।=) (पुस्तकोंके मूल्यसे) अधिक भेजें। बुकपोस्टका पैकेट प्रायः गुम हो जाया करता है; अतः इस प्रकार खोयी हुई पुस्तकोंके लिये हम जिम्मेवार नहीं हैं।

कमीशन-नियम

१) से कमकी पुस्तकोंपर कमीशन नहीं दिया जाता। १) से ५) तक ६।) सैकड़ा, ५) से १०) तक १२॥) सैकड़ा, फिर २५) तक १८॥।) सैकड़ा, इससे ऊपर २५) सैकड़ा दिया जाता है।

३०) की पुस्तकें होनेसे ग्राहकको रेलवे-स्टेशनपर मालगाड़ीसे फ्री डिलेवरी दी जायगी। परन्तु सभी प्रकारकी पुस्तकें लेनी होंगी, केवल गीता नहीं। दीपावलीसे दीपावलीतक १०००) नेटकी पुस्तकें सीधे आर्डर भेजकर लेनेवालोंको ३) सैकड़ा कमीशन और दिया जायगा। जल्दीके कारण रेलपार्सलसे मँगवानेपर आधा भाड़ा दिया जायगा। इससे अधिक कमीशनके लिये लिखा-पढ़ी न करें।

*प्रेम-योग—सचित्र, लेखक—श्रीवियोगी हरिजी, पृष्ठ ४२०, बहुत मोटा एण्टिक कागज, मूल्य अजिल्द १।), सजिल्द ... १॥)

श्रीकृष्ण-विज्ञान—अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीताका मूलसहित हिन्दी-पद्यानुवाद, गीताके श्लोकोंके ठीक सामने ही कवितामें अनुवाद छपा है। दो चित्र, पृष्ठ २७५, मोटा कागज, मू० ॥।), स० १)

विनय-पत्रिका—सरल हिन्दी-भावार्थ-सहित, ६ चित्र, अनुवादक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, मू० १), सजिल्द ... १।)

†भगवतरत्न प्रह्लाद—३ रङ्गीन, ५ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ ३४०, मोटे अक्षर, सुन्दर छपाई, मूल्य १) सजिल्द ... १।)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)—सचित्र, श्रीचैतन्यदेवकी बड़ी जीवनी। पृष्ठ ३६० मू० ॥।=), सजिल्द १=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड २)—सचित्र, अभी छपी है। अवश्य देखें। पृष्ठ ४५०, मूल्य १=), सजिल्द १।=)

श्रीमद्भागवतान्तर्गत एकादश स्कन्ध—सचित्र, सटीक, पृष्ठ ४२०, मूल्य केवल ॥।) सजिल्द ... १)

देवर्षि नारद—२ रंगीन, ३ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ २४०, सुन्दर छपाई, मूल्य ॥।), सजिल्द ... ... १)

तत्त्व-चिन्तामणि भाग १—सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, यह ग्रन्थ परम उपयोगी है। इसके मननसे धर्ममें श्रद्धा, भगवान्‌में प्रेम और विश्वास एवं नित्यके बर्तावमें सत्य व्यवहार और सबसे प्रेम, अत्यन्त आनन्द एवं शान्तिकी प्राप्ति होती है। पृष्ठ ३५०, मूल्य ॥=), सजिल्द ... ॥।-)

तत्त्व-चिन्तामणि भाग २—सचित्र, लोक और परलोकके सुख-साधनकी राह बतानेवाले सुविचारपूर्ण सुन्दर-सुन्दर लेखोंका अति उत्तम संग्रह है। ६०० से ऊपर पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य प्रचारार्थ केवल ॥।=) रक्खा गया है। यह अभी छपी है। एक पुस्तक अवश्य मँगावें।

नैवेद्य—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके २८ लेख और ६ कविताओंका सचित्र नया सुन्दर ग्रन्थ, पृ० ३५०, मू० ॥≈), स० ... ॥।-)

श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र—दक्षिणके अत्यन्त प्रसिद्ध, सबसे अधिक प्रभाव-

*-† दुबारा छपनेपर मिल सकेगा।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

शाली भक्त, 'श्रीज्ञानेश्वरी गीता' के कर्ताकी जीवनदायिनी जीवनी और उनके उपदेशोंका नमूना। एक बार अवश्य पढ़ें। सचित्र, पृष्ठ ३५६, मू० ... ... ॥।-)

विष्णुसहस्रनाम-शांकरभाष्य हिन्दी-टीकासहित, सचित्र; भाष्यके सामने ही उसका अर्थ छापा गया है। नित्य-पाठके स्तोत्रोंमें सबसे अधिक प्रचार विष्णुसहस्रनामका ही है। भगवान्के नामोंके रहस्य जाननेके लिये यह अर्थ अद्वितीय है, मूल्य ॥=) बहुत सुलभ रक्खा है। अर्थ जानकर पाठ करनेमें यह अति आनन्ददायक है।

श्रुति-रत्नावली-लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी, खास-खास श्रुतियोंका अर्थसहित संग्रह; एक पेजमें मूल श्रुतियाँ और उनके सामनेके पेजमें उनके अर्थ रक्खे गये हैं, मू० ॥)

तुलसी-दल-लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, इसमें छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, आस्तिक-नास्तिक, विद्वान्-मूर्ख, भक्त-ज्ञानी, गृहस्थी-त्यागी, कला और साहित्य-प्रेमी सबके लिये कुछ-न-कुछ उन्नतिका मार्ग मिल सकता है। पृष्ठ २६४, सचित्र, मू० ॥), स० ॥≡)

श्रीएकनाथ-चरित्र-ले०-हरिभक्तिपरायण पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, भाषान्तरकार-पं० श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे। हिन्दी-में एकनाथ महाराजकी जीवनी अभीतक नहीं देखी, मूल्य ... ॥)

दिनचर्या-(सचित्र) उठनेसे सोनेतक करनेयोग्य धार्मिक बातोंका वर्णन। नित्य-पाठके योग्य स्तोत्र और भजनोंसहित। मूल्य ॥)

विवेक-चूड़ामणि-(सानुवाद, सचित्र) पृ० २२४, मू० ।≡) स० ॥=)

श्रीरामकृष्ण परमहंस-(सचित्र) इस ग्रन्थमें इन्हींके जीवन और ज्ञानभरे उपदेशोंका संग्रह है। पृ० २५०, मूल्य ... ।≡)

भक्त-भारती-७ चित्र, कवितामें ७ भक्तोंकी सरल कथाएँ, मू० ।≡), स० ॥=)

भक्त-बालक-गोविन्द, मोहन आदि बालक-भक्तोंकी कथाएँ हैं, ।-)

भक्त-नारी-स्त्रियोंमें धार्मिक भाव बढ़ानेके लिये बहुत उपयोगी कथाएँ हैं।-)

भक्त-पञ्चरत्न-यह पाँच कथाओंकी पुस्तक सद्गृहस्थोंके लिये बड़े कामकी है।-)

आदर्श भक्त-राजा शिवि, रन्तिदेव, अम्बरीष आदिकी कथाएँ, ७चित्र, मू०।-)

भक्त-चन्द्रिका-भगवान्के प्यारे भक्तोंकी मीठी-मीठी बातें, ७चित्र, मू०।-)

भक्त-सप्तरत्न-सात भक्तोंकी मनोहर गाथाएँ, ७ चित्र पृष्ठ १०६ मू०।-)

भक्त-कुसुम-छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सबके पढ़ने योग्य प्रेमभक्तिपूर्ण ग्रन्थ।-)

गीतामें भक्ति-योग-(सचित्र) लेखक-श्रीवियोगी हरिजी ... ।-)

परमार्थ-पत्रावली-श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके ५१ कल्याणकारी पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ १४४, एण्टिक कागज, मूल्य ... ।)

माता–श्रीअरविन्दकी अंग्रेजी पुस्तक (Mother) का अनुवाद, मू० ।)

[illegible]ुतिकी टेर–(सचित्र) लेखक–स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी, मू० ।)

ज्ञानयोग–सन्त श्रीभवानीशंकरजी महाराजके ज्ञानयोगसम्बन्धी उपदेश, पृष्ठ १२४, मूल्य ... ।)

व्रजकी झाँकी–लगभग ५० चित्र; भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला-भूमिके सौन्दर्य, माहात्म्य और विचित्रताओंका परिक्रमाके ढङ्गसे बड़ा सुन्दर वर्णन है। पढ़नेसे व्रजयात्रा-सा आनन्द आता है। मूल्य ... ।)

पत्र-पुष्प–सचित्र भावमय भजनोंकी पुस्तक, पृष्ठ ६६, मू० ≡)॥, स० ।)॥

श्लोक-सुधाकर–(सानुवाद, सचित्र) इसमें विषयभोगोंकी तुच्छता दिखाते हुए आत्मसिद्धिके उपाय बताये गये हैं, मूल्य ≡)॥

गीता-निबन्धावली–गीताकी अनेक बातें समझनेके लिये उपयोगी है। यह गीता-परीक्षाकी मध्यमाकी पढ़ाईमें रक्खी गयी है, मू० ≡)॥

मानव-धर्म–ले०–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ ११२, मूल्य ≡)

साधन-पथ– ,, सचित्र, पृ० ७२, मू० ≈)॥

अपरोक्षानुभूति–मूल श्लोक और अर्थसहित सचित्र मूल्य ... =)॥

मनन-माला–यह भावुक भक्तोंके बड़े कामकी चीज है, मू० ... =)॥

चित्रकूटकी झाँकी (२२ चित्र) ले०–लाला सीतारामजी बी० ए० ≈)

भजन-संग्रह प्रथम भाग–इसमें तुलसी, सूर, कबीरके भजन हैं ... =)

भजन-संग्रह द्वितीय भाग–पृष्ठ १८६, मूल्य ... ≈)

भजन-संग्रह तृतीय भाग–पृ० १६०, सौ भक्तोंके पद-संग्रह मूल्य ... ≈)

भजन-संग्रह चतुर्थ भाग–मुसलमान भक्तों और कवियोंके पद-संग्रह =)

स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी–(नये संस्करणमें १० पृष्ठ बढ़े हैं) ... =)

सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय ... –)॥

श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ जानने योग्य विषय ... –)॥

गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग ... –)॥

मनुस्मृति द्वितीय अध्याय अर्थसहित ... –)॥

---

* संस्करण समाप्त हो गया। कुछ ठहरकर फिर छपेगा।

परमार्थ-ग्रन्थमालाकी नौ मणियाँ

(१) तत्त्व-चिन्तामणि (भाग १)

मूल्य ॥≈) सजिल्द ॥|-)

पुस्तकमें धर्मका भाव बड़ा जागरूक है, प्रत्येक पृष्ठसे सचाई और सात्त्विकी श्रद्धा प्रकट होती है। ... लेख तो अमृतरूप हैं। –माधुरी

(२) मानव-धर्म

श्रीमनुमहाराजकथित धर्मके दश प्रकारके भेद बड़ी सरल, सुबोध भाषामें उदाहरणोंसहित समझाये गये हैं। ... ... ≋)

(३) साधन-पथ

इसमें साधन-पथके विघ्नों, उनके निवारणके उपायों तथा सहायक साधनोंका विस्तृत वर्णन किया गया है। मूल्य ... ≈)॥

(४) तुलसीदल

श्रीहनुमानप्रसादजीके २३ लेख और ४ कविताओंके संग्रहका नवीन संस्करण। इस बार ५४ पेजका बहुत ही सुन्दर 'गोपी-प्रेम' शीर्षक लेख बढ़ानेपर भी दाम वही ॥) सजिल्द ... ॥≋)

(५) माता (लेखक–श्रीअरविन्द)

इस पुस्तकके प्रत्येक फार्मके प्रूफ पाण्डिचेरी भेजकर भलीप्रकार संशोधित होकर उनकी स्वीकृतिसे सावधानीपूर्वक छापे गये हैं। मू० ।) मात्र

(६) परमार्थ-पत्रावली

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कल्याणकारी ५१ पत्रोंका छोटा-सा संग्रह, पृष्ठ १४४, मूल्य ... ... ।) मात्र

(७) नैवेद्य

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके २८ लेख और ६ कविताओंका सचित्र, सुन्दर ग्रन्थ, पृष्ठ ३५०, मूल्य ॥=) सजिल्द ... ॥|-)

(८) ईश्वर (लेखक–श्रीमालवीयजी) मू० ... -)।

(९) तत्त्व-चिन्तामणि (भाग २)

पृष्ठ ६३२, मोटा एण्टिक कागज, सुन्दर छपाई, मूल्य प्रचारार्थ केवल ॥|=) सजिल्द ... १=) मात्र

पता–गीताप्रेस, गोरखपुर